श्री सीताराम जी

श्री भागवत-दर्शन :—

भागवती कथा

सताईसवाँ खण्ड

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

लेखक—
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक—
संकीर्तन भवन
प्रतिष्ठानपुर झूसी प्रयाग

तृतीय संस्करण] माघ सम्वत् २०११ वि० [मूल्य २-

मुद्रक—राजाराम शुक्ल सङ्कीर्तन प्रेस, वंशीवट वृन्दावन।

विषय-सूची

नाम लेने का रस मिल जाता है, वे एक दिन अन्न पानी के बिना तो रह भी सकते हैं, किन्तु तुम्हारे नाम को बिना लिये नहीं रह सकते। और चाहे जीवनोपयोगी वस्तुओं से मन हट भी जाय, किन्तु तुम्हारे नाम से नाम व्यसनियों का चित्त कभी नहीं हटता। वे चाहते हैं, जब तक जीवें तब तक तुम्हारे नामामृत को निरंतर पावें। प्राण जिस समय निकलने लगें, तब हमारे मुख में एकमात्र तुम्हारा ही नाम हो। तुम्हारे नाम में इतनी मोहकता, मादकता क्यों है, क्यों इतना प्रिय है ? इसे हम नाम विमुख अज्ञप्राणी क्या जानें ?

जैसे तुम्हारे "राम" इन दो सरल सीधे शब्दों में अत्यधिक आकर्षण है, उतना ही तुम्हारे चारुचरितों में आवश्यकता से अधिक आकर्षण है। जो भी कवि कविता करने चला है, उसने आपके ही चरितों के गान में अपनी कविता की सार्थकता समझी है। आपके चरितों के गान में कविता के गुण न भी हों, वह पद्य असम्बद्ध भी हो, तो भी मनीषियों ने उनकी प्रशंसा की है। जिन को आपके चरित्रोंके सुननेका व्यसन पड़ गया है,उनके कर्ण कुहर कभी सुनते सुनते भरते नहीं, जिन्हें आपके गुणगान का रोग हो गया है, उनकी वाणी आपके गुण गाते गाते कभी थकती नहीं। जिनकी लेखनी को आपके चरित लिखने का व्यसन पड़ गया है, उनकी लेखनी-लिखते लिखते कभी घिसती नहीं

रहे। जिनके पथ-श्रम को कठिन कर वाले हनुमानजी तथा लक्ष्मण दूर करते थे। सूर्पणखा को विरूप करने के कारण प्रिया हरण की विरहव्यथा से कुपित तथा कुटिल भ्रुकुटियों से सागर भयभीत हो गया था, उस पर जो पुल बाँधकर दुष्ट दलरूप वन के लिये दावानल हुए, वे कोशल किशोर हमारी रक्षा करें।"

भूमिका

मृत्यु का भय

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायन्-
लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ।
त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य-
स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥*

(श्री भा० १० स्क० ३ अ० २७ श्लोक)

छप्पय

मरन धरम यह जीव जगत कहँ इतउत भटकत ।
पाइ विषय सुख छनिक भूलि तिनहीमहँ अटकत ॥
समुझत विषयनि सत्य न कछु तिन महं सुख पावे ।
यों ही बितवत समय मृत्यु इक दिन चट आवे ॥
मृत्यु जनम के संग भई, जो जनम्यो सो मरेगो ।
हरि सुमिरन जो करेगो, मृत्यु मूड़ पग धरेगो ॥

---

*भगवान् की स्तुति करती हुई भगवती देवकी कह रही हैं—"हे आदि पुरुष प्रभो ! मरणधर्मा प्राणी मृत्यु रूप कराल व्याल से भयभीत होकर सम्पूर्ण लोको मे भटकता फिरता है, किन्तु इसे कहीं शान्ति प्राप्त नही होती । कही भी इसे ऐसा स्थान नही मिलता जहा मृत्यु का भय न हो । भाग्यवश यदि किसी प्रकार आपके चरणों की इसे शरण मिल जाय तो उसे पाकर यह सुख की नींद सोता है मृत्यु इससे दूर हट जाती है।"

अवतार साधन सिखाने के निमित्त होता है, क्योंकि मनुष्य साधक है।

कर्म मात्र दोषमय, अपूर्ण और बन्धन का हेतु है। इसलिये नैष्कर्म्य स्थिति को सर्व श्रेष्ठ कहा है। नैष्कर्म्य स्थिति कर्म करके ही प्राप्त की जा सकती है, अतः धर्म पूर्वक कर्म करना ही उत्तम साधन है। इन्द्रियों के अनुकूल विषयों के भोगने में स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इन्द्रियाँ इतनी अतृप्त हैं इतनी भूखी हैं, कि विषयों को भोगते भोगते ये तृप्त नहीं होतीं। उनको नियम में रखना यही धर्म का कार्य है। रति सुख की इच्छा है, तो उसे पत्नी में पूर्ण करो। पत्नी भी धर्मपत्नि हो,सब समय नहीं, नियमित समय में। धर्म यही शिक्षा देता है। यहाँ उद्देश्य भोग में प्रवृत्ति कराना नहीं है, किन्तु प्रधान लक्ष्य है, त्याग। एक मात्र त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति हो सकती है। भगवती श्रुति कहती है—"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथ" भोग करो, त्याग भाव से करो—मागृध कस्य-विद् धनम्—किसी दूसरे के धन पर मन मत चलाओ। अधर्म पूर्वक जो दूसरे के उपभोग की वस्तु है, उसका उपभोग करने का विचार मत करो। त्याग ही प्रधान उद्देश्य है। त्याग द्वारा ही तुम परम पद को प्राप्त कर सकोगे। अपने मुख्य उद्देश्य की पूर्ति कर सकोगे। राम ने अपने जीवन में एक मात्र त्याग को ही प्रधानता दी है, त्याग से ही उन्होंने सबके मन पर अपना अधिकार जमा लिया है। त्याग की मर्यादा स्थापित करके वे मर्यादा पुरुषोत्तम के नाम से विख्यात हुए हैं। उनका जीवन सार्वजनिक होने से सबके उपयोगी है, क्योंकि उसमें नियम की दृढ़ता और त्याग की प्रबलता है, कृष्णावतार में प्रेम की प्रबलता और त्याग की दृढ़ता है। यही इन दोनों अवतारों में अन्तर है। इसीलिये कृष्ण उपासना वैयक्तिक है और राम

जाती हैं। फिर यह बात स्मरण नही रहती कि एक दिन मरना है। इतने मृतकों को नित्य देखते हैं, उनकी मृत्यु पर आश्चर्य नही होता, किन्तु जहाँ अपने किसी परिचित,सुहृद्, इष्ट मित्र की मृत्यु का समाचार सुनते है, तो तुरन्त चौंक पड़ते हैं और कहते है—"हैं, उनकी मृत्यु हो गई, बड़े आश्चर्य की बात है। कल तक तो वे अच्छे थे।" अब बताइये जो बात अवश्यम्भावी है, उसमे आचार्य की कौन सी बात है। आश्चर्य की बात तो यही है कि नौ छिद्र वाले इस पात्र में प्राणरूपी पय ठहरा हुआ है। घडे में एक छिद्र होता है तो उसमें पानी नही ठहर सकता। इस देहरूपी घट में तो नौ दस छिद्र है। जितने दिन इसमें प्राण ठहरा रहता है, यही एक अद्‌भुत आश्चर्य है। मृत्यु में कुछ देर थोडे ही लगती है। हम प्रश्वास छोड़ते हैं, साँस लेते है। एक प्रश्वास छोड़ी वह लौटकर न आयी मृत्यु हो गयी। मृत्यु के लिये पहिले से कोई विज्ञप्ति नहीं दी जाती, कि अमुक दिन सावधान रहना। आकाश, पाताल, अन्तरिक्ष, स्वर्ग तथा नरक कही भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ मृत्यु न हो। छाया की भाँति सदा साथ रहती है, कब वह प्रत्यक्षहो जाय इसका कोई निश्चय नहीं। इसीलिए सन्त महात्मा बार-बार चेतावनी देते रहते हैं, कि माधव को और मृत्यु को भूलना मत। जिसे सदामृत्यु की स्मति बनी रहती है, उसे मत्यु समय पर दुःख नही होता। नही तो ऐसा सुनते हैं। सहस्रों बिच्छुओं के काटने पर जैसी पीडा होती है उससे भी अधिक पीड़ा मर्मस्थानों से प्राणों के निकलते समय होती है। ज्ञानी और अज्ञानी में यही एक सबसे बडा अन्तर है। अज्ञानी तो सदा मृत्यु से बचने के लिये प्रयत्नशील रहता है। उसकी हार्दिक इच्छा यही रहती है,मैं सुख पूर्वक जीता रहूँ। ज्ञानीकी इच्छा यह रहती

है, उसके विषय में तो वेदों ने भी नेति-नेति कहा है। उसका अनुभव तो योगिजन समाधि में करते हैं, वह विचार का विषय नहीं, उस विषय में तर्क वितर्क से काम चलने का नहीं। वह तो अनुभवगम्य है।

विचारणीय विषय तो उनका पुरुषोत्तम रूप है। नररूप धारण करके जो उन्होंने मानवीय लीलायें की हैं। उन्होंने जो एक मनुष्य चरित का सर्वोत्तम आदर्श उपस्थित किया है, उसके विषय में मानवता के नाते हम विचार कर सकते हैं। राम अपने सब भाइयों में बड़े थे, अतः छोटों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसका आदर्श उन्होंने बाल्यकाल से ही उपस्थित किया। भरतजी जब खेल में हारने लगते, तब आप ढीले पड़ जाते, भरत को जिता देते और स्वयं प्रसन्न होते।

राजा ने राम को युवराज बनाना चाहा। गुरु ने आज्ञा दी। राम पिता तथा गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कैसे करते? वे राज्याभिषेक के लिए प्रस्तुत हो गये। नगर सजाया गया। उन्हें दुःख था, उनके भाई भरत शत्रुघ्न इस समय उपस्थित न थे, कारण जो भी रहा हो, लग्न उसी दिन की निकली थी। राज्याभिषेक होते-होते रुक गया। कुबरी की प्रेरणा से कैकेयी ने राजा को मोह कर राम का वनवास और भरत का राज्याभिषेक ये दो वर माँग लिये। धर्म पाश में बँधे दुखित राजा ने ये वर दे दिये। राम को सूचना हुई। राम उसी उत्साह से लक्ष्मण सीता सहित चले गये। राजा ने बहुत रोका, राम नहीं रुके राजा सुरपुर पधार गये, भरत ने राज्य नहीं ग्रहण किया। राम को लौटाने चित्रकूट गये। राम लौटे नहीं। भरत उनकी चरणपादुका लेकर लौट आये।

इस विषय में लोग ये तर्क करते हैं—

तीनों दोष कुपित होकर वाणी को रोक लेते हैं उस समय उस हड़- बड़ाहट में आपका स्मरण होना असम्भव है। अतः इसी क्षण मेरा मन आपके चरण कमलों में रम जाय।" सारांश यह कि भगवद् भक्त अभी से भगवान् को हृदय में बिठा लेना चाहते है, जिन्हें देखकर मृत्यु भी दूर भाग जाय, जिनके सहारे मृत्यु के सिर पर भी पैर रखा जा सके। इसलिये साधकोंको सदा मृत्यु का स्मरण रखना चाहिये, हमें एक दिन मरना है। मैंने सुना था योरोप में पहिले कोई एक ऐसा छोटा सा राज्य था। उसके राजा के यहाँ हर समय दो आदमी रहते थे और वे कुछ देर ठहर ठहर कर राजा के सम्मुख यह शब्द उच्चारण करते रहते थे—"तुम्हें एक दिन मरना है। तुम्हें एक दिन मरना है।" सचमुच में यदि मनुष्य को अपनी मृत्यु स्मरण बनी रहे, तो वह बहुत से पापों से बच जाय। मनुष्य अधिकांश पाप मृत्यु को भूलकर ही करता है।

हमें और बातों पर चाहे विश्वास न भी हो, किन्तु जब किसी की मृत्यु का समाचार सुनते है, तो उस पर सहसा विश्वास नहीं किया जाता। बहुत सी युक्तियाँ देते हैं, फिर अन्त में कह देते हैं—"अजी' मृत्यु का कोई समय निश्चित थोड़े ही है। जब चाहे श्वास निकल जाय। 'कोई रुग्ण हो, रोग ग्रस्त हो, उसकी मृत्यु का समाचार सुनते है, तो कह देते है, 'अजी वे तो बहुत दिन से रोगग्रस्त थे' किन्तु जब सहसा किसी की मृत्यु सुनते हैं, तो सगे सम्बन्धियों में एक विचित्र विस्मय हो जाती है, चित्त दुविधा में फंस जाता है। अविश्वास भी नहीं होता, क्योंकि मृत्यु ध्रुव है औरविश्वास भी नहीं होता, क्योंकि उसकी कोई सम्भावना पहिले से नहीं थी। यदि कोई झूठी ही मृत्यु

लालच करना। बड़े लोगों का काम है लालची की उपेक्षा करना। उसके प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित करना, उसके लिये अपने अधिकार को त्याग देना। माता पिता बच्चों को थाली में साथ बिठाकर खिलाते हैं। बच्चों का स्वभाव होता है, थाली में जो भी अच्छी वस्तु देखेंगे, उसे शीघ्रता से पहिले खा जायँगे। माता पिता उनकी इस चातुरी को देखकर हँस जायँगे। वे उनसे लड़ेंगे नहीं अधिकार नहीं जतावेंगे, कि इस मिठाई में आधा भाग हमारा भी है तुम इस सबको क्यों खाये जाते हो? इसी प्रकार छोटे यदि लालच भी करें, तो बड़ों को त्याग वृत्ति से ही उन पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। लड़कर उन्हें परास्त करके जो प्राप्त होता है वह उत्तम मार्ग नहीं।

१—श्रीराम ने बन जाकर अत्यन्त बुद्धिमानी की, उनका चरित्र उसी कारण परम पावन और त्रिभुवन में गान करने योग्य बन गया।

२—राजा स्त्री के वश में थे, इसे राम भी जानते थे, किन्तु राजा जो विवश थे, धर्मके कारण थे। कैकेयी ने उनसे शपथ करा ली थी। राजा को कैकेयी के प्रति तो तनिक भी ममत्व न था। वह मरे या जीवे। उन्हें चिन्ता थी अपने प्रणकी। मेरे कुल में आज तक कोई ऐसा नहीं हुआ जिसने प्रतिज्ञा करके उसे पूरी न किया हो। इस लिये राम पिता के वचन को पूरा करने वन गये थे, न कि कैकेयी को प्रसन्न करने के निमित्त। वन जाने से कैकेयी की प्रसन्नता स्वाभाविक थी, यही उसको अभीष्ट था।

३—रामने कोई गृहस्थ धर्म का त्याग नहीं किया, विधिवत् वानप्रस्थ नहीं लिया। वन में चौदह वर्ष मुनिवेष बनाकर रहना ही था, इसलिये उनका वनवास नैमित्तिक था। वहाँ उनका जो स्वधर्म था, उसका उन्होंने पालन किया।

पं० नित्यानन्द जी भट्ट कथावाचक तथा और भी लोगों के पत्र मिले। सभी यही लिखते थे, हमने आपके विषय में बहुत ही बुरा समाचार सुना है, तुरन्त उत्तर दें, बड़ी चिन्ता है। किसी ने यह नही लिखा कि उन्होंने सुना क्या है। यहां से तार तो तुरन्त दिये गये, किन्तु न जाने क्यों वे दो दिन पश्चात् पहुँचे। तीन दिन तक हमारे वृन्दावन के कृपालु बन्धु चिन्ता ही में बने रहे।

यह तो मुझे विश्वास है, मेरा मृत्यु से किसी को दुःख तो क्या होने का। दुःख होता है प्रेम में। मरने को नित्य ही मरते हैं। जिनसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं उनकी मृत्यु पर किसी को दुःख नहीं होता। जिनका जीव परोपकारमय है या जिनसे जिनको प्रेम होता है उनकी मृत्यु पर दुःख होता है। प्रेम मैंने किसी से किया नहीं। बहुत रूखी प्रकृति होनेसे सभी मेरा साथ छोड़कर चले गये और मुझसे घृणा करने लगे। जब मैं किसी से प्रेम नही करता तो मुझसे प्रेम कौन करने लगा, रही परोपकार की बात सो मैं तो अपनी वासनाओं की पूर्ति कर रहा हूँ। इस वासना पूर्ति में कुछ उपकार हो जाय, तो वह तो गांव जाते हुए तिनका छूनेके समान है! इसलिये मेरी मृत्यु से कोई बड़ी भारी हलचल मचेगी ऐसा तो मानता नही, किन्तु फिर भी जिनसे अपार सम्बन्ध रहा है, जो सन्त स्वभावके कारण अहैतु की कृपा रखते है उनके मनमें चिन्ता होना स्वाभाविक ही है। हमें चार पाँच दिन तक कोई समाचार मिला नही कि बात क्या थी, वृन्दावनमें किसने यह निराधार समाचार उड़ा दिया। ४, ५ दिनके पश्चात् "भक्त-भारत" के सम्पादक प्रियवर रामदास शास्त्री का पत्र आया। उससे सब बातें विदित हुईं। उनका पत्र यह था—

कुछ कहने का साहस ही न पड़ा। राम राज्य के भूखे नहीं थे, राम कलह नहीं चाहते थे, उन्हें तो प्रेम पूर्वक आत्मीयों के ऊपर विजय पानी थी, त्याग और तपस्या द्वारा कुल के गौरव की रक्षा करनी थी। यदि राम राज्य के अधिकार में फँस जाते, तो उनका चरित्र कैसे बढ़ता, कैसे लोग उस पावन चरित्र को पढ़-पढ़ कर पार होते।

राम चरित्र में जो मुख्य प्रसंग हैं वह राज्य त्याग कर वन जाने का ही है। अर्थात् त्याग का ही आदर्श है। पन्द्रह वर्ष तक विवाह चरित्र है १४ वर्ष तक वनका चरित्र है २९ वर्षों का ही वर्णन है। उसके पश्चात् उन्होंने ग्यारह सहस्र वर्ष राज्य किया उसका कुछ वर्णन नहीं। उसमें वर्णन वाली कोई बात नहीं। राम राजा थे, राजाके कर्त्तव्य का उन्होंने उत्तमता से पालन किया। सन्ध्या करना द्विजमात्र का धर्म है, कर्त्तव्य है इसके करने से कोई विशेष पुण्य नहीं। हाँ, न करने से पाप अवश्य लगता है। सन्ध्या वन्दन के अतिरिक्त जो विशेष दान, धर्म तथा तप आदि किये जाते हैं उनसे यश होता है प्रशंसा होती है। राम ने राजकुमार होकर—राज्य का अधिकार मिलते मिलते प्रसन्नता पूर्वक उसे त्याग दिया और सर्वस्व त्याग कर क्षण भर में वनवासी बन गये। यही उनका महान आदर्श था। त्यागी वैरागी राम के उसी रूप के उपासक हैं। वे जटा बढ़ाकर भस्म रमा कर आपके उसी रूप को बनाते हैं और वनवासी राम का ध्यान करते हैं।

वनवास का भी राम ने कितना उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया। तेरह वर्षों तक वे वनों में विचरते रहे। कहीं कुटी मठ बनाकर नहीं रहे। त्यागी जहाँ कुटी मठ बनाकर रहने लगता है, वहाँ रागद्वेष हो ही जाता है, फिर उसके जीवन में

किस्सा बढ़ते-बढ़ते भयंकर रूप हो चला—परिणाम में जो हृदय की हालत थी—कही नही जा सकती। पर अब प्रार्थना श्री चरणों में यह है कि—आखिर यह क्या लीला है—कुछ संतों के अनुभव सुनिये—

—"ब्रह्मचारीजी के लिये एक ईश्वरीय सूचना है और प्रतिष्ठानपुर अब उनके अनुरूप नहीं रह गया है, अतः वह स्थान छोड़ देना चाहिये—भागवती कथा अन्यत्र भी लिखी जा सकती है।"

❀ ❀ ❀ ❀

—ब्रह्मचारीजी यद्यपि एक महान् कार्य में व्यस्त हैं और कार्य भी लोकातीत है—पर संसारियों की दृष्टि में एक प्रपंचमय दीख रहा है—इसी कारण लोगों की द्वेष-भावना होती जा रही है।

❀ ❀ ❀ ❀

—यह तो युग के स्वरूप का विस्तार है—अभी तो इससे भी अधिक भयकर घटनाएँ सुनने को मिलेंगी—पर इस पाप रूप युग का भी कल्याण करने वाले महात्मा ब्रह्मचारी जैसे मौजूद है। धर्म संरक्षकों पर ही इसका प्रहार होता है—जैसे राजा परीक्षित् पर।

❀ ❀ ❀ ❀

—इस तरह की घटनाएँ महापुरुषों के रूप के अनुकूल हैं, इससे महत्व चमकता है।

इस घटना से ब्रह्मचारीजी को अमरत्व प्राप्त हुआ है—भगवान् उनका कल्याण करें।

कृपया हस्तलिखित पत्र से भी सूचित कर कृतार्थ करें।

रामदास शास्त्री

में काम वासना ने घर कर लिया है, वहाँ राम अपने राम रूप से रह नहीं सकते। "जहाँ काम तहँ राम नहीं।"

राक्षसी राम के त्रिभुवन विमोहित अनूप रूप को देखकर आसक्त हो गयी। राम से छूटते ही उसने कहा—"मेरे साथ तुम विवाह कर लो।"

राम ने शान्ति के साथ कहा—"देवीजी! मेरे पास तो यह है। मैं दो विवाह नहीं करता।"

वह बोली—"इसे मैं खाये जाती हूँ।"

राम ने साम से काम न होते देखकर दाम का आश्रय लिया। कह दिया—"अच्छा, मैं अपने भाई को कह देता हूँ, उसे दूलहा बना लो।"

लक्ष्मण ने उसे नहीं स्वीकारा। सेवा धर्म के विरुद्ध था। सेवा धर्म में शारीरिक सुख को कोई स्थान नहीं। दाम से भी काम न चला, तो राम ने भेद डाला। कह दिया—"लक्ष्मण ऊपर से ही कहता है तुम उसकी अनुनय विनय करो।" राक्षसी फिर लक्ष्मण के समीप गयी। यथार्थ बात यह थी, कि राम समय को टाल रहे थे, काम का वेग, ज्वर का वेग तथा वैराग्यका वेग सदा एकसा नहीं रहता। राम समय टाल रहे थे, राक्षसी का रंग गाढ़ा होता जाता था। 'कामातक्रोधोऽभिजायते।" काम वासना की इच्छानुसार पूर्ति नहीं होती, तो क्रोध आही जाता है। राक्षसी ने देखा राम काम के वशीभूत नहीं होते। ये निर्विकार बने हुए हैं। तब उसे क्रोध आया। जब दोनों ही ओर से विकार हो तभी सम्बन्ध होता है। राम निर्विकार, राक्षसी काम के अधीन; सम्बन्ध न हो सका। वह सीताजी को खाने को दौड़ी। अब हम पूछते हैं नाक कान काटने के अतिरिक्त दूसरा कौनसा साधन था। अब तो वह आततायिनी बन गयी थी।

भागवती कथा की बात सो वह कहने योग्य नहीं है। वर्ष के अन्त में पाँच छै सहस्त्र का घाटा होता है। उसे घाटा कहना भी उचित नही। उसकी दक्षिणा से जो कुछ आता है उसे सब लोग खा जाते है। अन्न आ जाता है ऊपरी कार्यों में व्यय हो जाता है। नित्य डाकघर की आशा लगाये लोग बैठे रहते है, आज कुछ आ जाय तो दाल आ जाय नमक आ जाय। वर्ष के अन्त मे जो घाटा हो जाता है, भगवान् किसी न किसी से पूरा करा ही देते है। प्रथम वर्ष में देहली के लाला सूरजनारायणजी ने अपने इष्ट मित्रों से कर करा के ५-७ हजार रुपये से उसे पूरा किया। दूसरे मे झरिया के वीरम वावू ने पाँच हजार देकर गाड़ी चलायी। अव तीसरे वर्ष भी पस्टम चल रही है। रही मेरी बात सो, मेरे परिचित सभी जानते है मेरे कुछ कृपालु महानुभाव हैं, जिनसे मैं किसी से चार पैसे किसी से दो पैसे नित्य के भिक्षा ले लेता हूँ। ऐसे कुछ "भिक्षा सदस्य" हैं। पहिले लोग उत्साह और श्रद्धा से देते थे। जवसे "भागवती कथा' का व्यापार आरम्भ हुआ है। लोगों की श्रद्धा घट गयी है। सव सोचते हैं—"अव तो ये व्यापार करने लगे हैं। जैसे हम वैसे ये इन्हें भिक्षा देने से क्या लाभ ?" इसलिये वहुत से वन्द भी कर दिये है। फिर भी कुछ वगीचे में साग भाजी वो लेते हैं। लस्टम पस्टम काम चल ही जाता है। मेरा जो व्यापार है, उसमें या तो घाटा ही घाटा है या लाभ ही लाभ है। घाटा तो इसलिये कि कभी इसमें आर्थिक लाभ न होगा। दश आय होगी, तो वीस व्यय होंगे। लाभ इसलिये हैं, कि जो भी कमी पड़ेगी चाहे ऐं करके करें चाहें चें करके, लोगों को पूरी ही करनी होगी। इसलिये हमें तो लाभ ही लाभ है नदी में नौका डूबती है, तो मल्लाह की तो केवल लँगोटी ही भीगती है। ऐसी दशा में यहाँ डाका डालकर कोई क्या लेगा। जानते हुए भी सन्देह

सब बातों का प्रसङ्गानुसार अगले अङ्कोंमें उल्लेख किया जायगा। 'भागवत चरित' के राम चरित्र में यदि कोई नवीनता पाठकों का दिखायी दे, तो उसे लेखक की मनगढ़न्त न समझें। राम चरित तो शतकोटि प्रविस्तर है। सौ करोड़ राम चरित में सब घटनायें हैं। अन्त में पाठकों से यही प्रार्थना है, कि वे राम के सरल नाम का जप करें, राम के सुमधुर नामों का कीर्तन करें राम के अनुपम रूप का ध्यान करें, राम की सुन्दर शिक्षाओं को धारण करें राम की सुमधुर कथा को नियम पूर्वक श्रवण करें। राम के अनुपम आदर्श को आगे रखकर व्यवहार करें और राम की भक्ति मे अपने को निमग्न कर दें। राम के सच्चे भक्तों का आश्रय लें और मुझे आशीर्वाद दें, कि काम के फन्दे से छूट-कर राम की चरण धूलि में लोटने का अधिकार पा सकूँ ? उपा-सना के लिये रामसा सरल, सीधा स्वामी कहाँ मिलेगा ? किन्तु किसी चोर जोर ने किसी को बल पूर्वक बन्द कर दिया हो, तो वह सरल स्वामी का मन से ही चिन्तन कर सकता है। मन भी यदि भययुक्त हो तो मन से भी चिन्तन करना असम्भव है। यह तो सरल स्वामी का काम है, कि स्वयं जाकर छुड़ाले और अपने चरणों का सेवक बना ले। किन्तु स्वामी को क्या पड़ी, उसके पास सेवकों की कमी तो है नहीं। सेवकों की कमी न भी हो तो भी यदि वह बन्दियों के बन्धन को नहीं छुड़ाता, तो वह स्वामी कह-लाने का अधिकारी नहीं। क्यों राम स्वामी ! कुछ करोगे ? अपने चरणों की शरण में लोगे ? विचार करना।

शत्रुवत् वन जाते हैं। प्रपञ्चमें रागद्वेष तो रहता है। जो साथियों के सहारे काम करता है,उसे पछताना पड़ता है। कोई भी काम करने वाला हो उसे सर्वप्रथम अपने साथियों के विरोध के लिए उद्यत होकर हो उस कार्य मे प्रवृत्त होना चाहिये।

आज का युग वड़ा भयंकर है। आज जो भी हो जाय,सोई थोड़ी। हम मुँह से तो धर्म कहते है। स्वयं हमारी धर्म में आस्था नहीं रही। हम अपने को ब्रह्मचारी कहते है, किन्तु शास्त्रों में जो सन्यासी ब्रह्मचारी के धर्म वताये हैं, उनमें से सौ अंशों में से एक अश का भी पालन नहीं करते। "यदापि युवती क्षिभर्नस्पृशेदार वीमपि" आदि जो धर्म हैं उनका पालन नहीं कर सकते। जिस क्षेत्र मे भी दृष्टि दौड़ाते है उधर ही दुराचार, कदाचार, दम्भ, कपट, पाखण्ड और अधर्म हो रहा है। इसमें दोष दे भी चाहें, तो किसी से एक हो तो उसे दोष दें यह तो कूप मे भाँग पड़ गया है। भीड़ मे हम चलते हैं, हम पीछे वालों पर क्यों विगड़ते हैं, "अजी, हमें धक्का क्यों दे रहे हो किन्तु आगे वालोंको हम भी धक्का दे रहे है इस वातको हम भूल ही जाते हैं। आगे वाला जव हमसे विगड़कर पूछता है "क्यों जी धक्का क्यों देते हो ?" तो हम उससे भी अधिक विगड़कर कहते हैं— "भाई, अव कैसे करे पीछे वाले दे रहे है।" इसी प्रकार हम स्वय धर्म का आचरण नहीं करते। दूसरों को वुरा भला कहते हैं, अरे ! वे सर्वनाश कर रहे है, धर्म पर कुठारावात कर रहे हैं। इसमे दोष किसे दें। "अयन्तु युगधर्मोहि वतते कस्य दूषणम्।"

अन्त में पाठकों से मेरी प्रार्थना यही है, कि ये सभी घटनाएँ जीवके कल्याण के ही लिये होती हैं। भगवान् की इच्छा से ही होती हैं, इनमें उपदेश भरा रहता है। जीव के लिये चेतावनी होती है, पाठक ऐसा आशीर्वाद दें, कि मैं मृत्यु का

मिथिला पथ के पथिक राम

(६५४)

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रम् ।
सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ॥
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिम् ।
सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥*
(श्री भा० ९ स्क० १० अ० ६ श्लो०)

छप्पय

मारि ताड़का चले फेरि सिद्धाश्रम आये।
गुरु मख दीक्षित भये राम, रक्षक कहलाये॥
पूर्णाहुतिके दिवस निशाचर-दल इक आयो।
मारयो राम सुबाहु लंक मारीच पठायो॥
मख रक्षक श्रीराम पै, अति प्रसन्न मुनिवर भये।
आशिष दुलहिन देनहित, धनुष यज्ञ महँ लै गये॥

शक्ति बिना शक्तिमान की शोभा नहीं शरीर में शक्ति न

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! श्री राम ने सीता के स्वयम्वर गृह में लोक के विख्यात वीरों के समाज मे जिसे तीन सौ आदमी खींचकर लाये थे उस शिवजी के उग्र धनुष को जैसे हाथी का बच्चा ईख के गन्ने को लीला से तोड़ देता है वैसे ही उन्होंने उसे चढ़ाकर तड़ से बीच से तोड़ डाला।"

सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः।
विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम् ॥*
(श्री भा० ६ स्क० ७ अ० २४ श्लोक)

छप्पय

मुनि रोक्यो मग कह्यो साङ्गता धन अब दीजै।
नृप बोले—मुनि ! एक मास धीरज अरु कीजै ॥
यों कहि काशी गये कपर्दी की रजधानी।
अवधिपूर्ण लखि पहुँच गये कौशिक अभिमानी ॥
द्रव्य याचना करी मुनि, नृप रानी विक्रय करी।
रोहित हूँ बेच्यो स्वय विके दक्षिणा द्विज भरी ॥

धैर्य की परीक्षा विपत्ति में होती है, सहन शीलता की परीक्षा क्रोध और अपमान के समय होती है और त्याग की परीक्षा दरिद्रता के समय होती है। ये संसारी धन वैभव आते

*श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! महारास हरिश्चन्द्र की अपनी स्त्री के सहित सत्य मे ऐसी निष्ठा और दृढ़ता देखकर विश्वामित्र जी परम प्रसन्न हुए और उन्हे तत्त्व ज्ञान का उपदेश दिया।"

हुई सकुचाती हुई, मृगी के समान विस्फारित नेत्रों से तरुपल्लवों को निहारती हुई सीता चलती हैं, वे ही राम सर्वसाधारण के राम हैं। उनके पीछे रहने पर भी सीता आगे ही हैं। तभी तो सब कहते हैं—"सीताराम सीताराम सीताराम।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब भगवान् विश्वामित्र का यज्ञ समाप्त हो गया, तब विश्वामित्र ने कहा—"राम! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें आशीर्वाद देना चाहता हूँ।"

लजाते हुए हाथ जोड़कर श्रीराम ने कहा—"प्रभो! मैं आपके आशिष के लिये तो सदा ही समुत्सुक बना रहता हूँ।"

विश्वामित्रजी ने मुस्कुराते हुए कहा—"देखो भैया! मैं तुम्हें आशिष यहाँ न दूँगा। महाराज जनक की राजधानी मिथिला में चलकर आशिष दूँगा।"

रामजी ने अनजान की भाँति पूछा—"महाराज! मिथिला में क्या है? वहाँ आप क्यों जायँगे।"

मुनि विश्वामित्र बोले—"देखो, बेटा! महाराज जनक एक बड़े प्रतापी धर्मात्मा ज्ञानी राजा हैं। उनके वंश के सभी विदेह कहलाते हैं, सभी आत्म ज्ञानी होते हैं। वे एक बड़ा भारी यज्ञ कर रहे हैं, उन्होंने चारों दिशाओं से ऋषि मुनियों, वेदज्ञब्राह्मणों तथा अपने सगे सम्बन्धियों को बुलाया है मेरे लिये भी निमंत्रण आया है, मुझे भी वहाँ जाना है। यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो तुम भी मेरे साथ चल सकते हो। वहीं मैं तुम्हें आशिष दूँगा।"

रामजी ने सोचा—"यज्ञों में निमंत्रण खाते फिरना यह तो साधु ब्राह्मणों का काम है, मुनि मुझे वहाँ क्यों ले जा रहे हैं। यज्ञ तो मैंने बहुत देखे हैं। मेरे ही यहाँ अवधपुरी में कितने बड़े यज्ञ होते हैं। पिताजी ने मुझे मुनि के यज्ञ की रक्षा के लिये

राजा बोले—"प्रिये ! मैं धर्मपाश में बँधा हूं, मुझे किसी ने बाँध नहीं लिया है, सत्य ने मुझे बाँध रखा है। अब मेरे सामने सत्य रक्षा का प्रश्न है।"

रानी ने कहा—"प्राणनाथ ! प्राण देकर भी सत्य की रक्षा करनी चाहिये। ब्राह्मण को वचन देकर उसका पालन करना चाहिये, जिस बात की प्रतिज्ञा की हो, उसे सामर्थ्य रहते पूरी करनी चाहिये।"

राजा बोले—"प्रिये ! यही तो मुझे चिन्ता है, कि किस प्रकार सत्य का पालन करूँ ?"

रानी बोली—हे जीवन धन ! मैं आपकी दासी हूँ, आज्ञा कारिणी हूँ, आपके अधीन हूँ, आप मुझे बेच दें और उसी द्रव्य से महामुनि को सन्तुष्ट करें।"

यह सुनते ही महाराज मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर गये, और बड़े ही आर्त स्वर मे बोले—"प्रिये ! तुम ऐसी बातें मुख से मत निकालो। अश्वमेध यज्ञों मे जो केश वेद के मंत्रों द्वारा दिव्यौषधि महौषधि के जलों द्वारा भिगोये गये हैं, उन्हें मैं अपने देखते दूसरो को कैसे छूने दूँगा।"

इस पर रानी बोली—"हे धर्मज्ञ ! धर्म के सम्मुख धन, धान्य बान्धव, स्त्री, बच्चे यहाँ तक कि प्राणों का भी कोई महत्व नहीं। मुझे पुत्र हो चुका है, आप धर्मत: पितृ ऋण से उऋण हो चुके हैं अतः आप कुछ द्रव्य लेकर मुझे किसी को दासी बना दें।" धर्म की रक्षा के लिये सब कुछ करना होता है।"

यह सुनकर राजा रो पड़े और रोते रोते बोले—"जिसकी दास दासियाँ भी सुवर्ण के कुण्डल पहिन कर आज्ञा चलाती थी, अपने हाथो कुछ काम नहीं करती थी, वही सम्राज्ञी शैव्या सेविका बन कर साधारण से साधारण सेवा कैसे कर सकेगी ?

चढ़ाना तो कौन कहे, वह भूमि पर से टससे मस भी नहीं हुआ। यह देखकर वे सब अपना सा मुँह लिये भाग गये। यदि तुम मेरे साथ जनक के यज्ञ में चलो, तो मैं तुम्हें वह धनुष दिखाऊँगा।। मेरा विश्वास है कि तुम उस पर अवश्य ही वाण चढ़ालोगे।"

यह सुनकर श्रीराम ने उत्सुकता प्रकट करते हुए कहा—"प्रभो! हम उस दिव्य धनुष को अवश्य ही देखना चाहते हैं। धनुष कितना बड़ा होगा। यह तो हमारे लिये बड़े आश्चर्य की बात होगी।"

मुनिने जब श्रीराम लक्ष्मण को मिथिला चलने को उत्सुक देखा, तब उन्होंने अपनी हवन की सामग्री छकड़ों में लदवाई, सबके बिस्तर छकड़ों मे लादे गये। सहस्रों मुनि सैकड़ों छकड़ों में अपना अपना सामान लादकर मुनि के साथ चलने को उद्यत हुए। मुनि ने कहा—"अब मैंने यहाँ सिद्धि प्राप्त कर ली, अब मैं यहाँ लौटकर न आऊँगा हिमवान् पर्वत पर तप करने चला जाऊँगा। मुनि के ऐसे निश्चय से आश्रम के वृक्ष मुरझा गये, लताएँ लटक गयीं। पक्षी रोने लगे। मृग, मयूर आदि पशुपक्षी मुनि के पीछे पीछे चलने लगे।

कुछ दूर चलकर मुनिने मृगोंको पुचकारा उन्हें थपथपी दी और बड़े स्नेह से कहा—"अब तुम लोग लौट जाओ।" यह सुनकर समस्त पशुपक्षी रोते-रोते वहीं खड़े रहे। मुनि आगे बढ़ गये सामग्रियों से लदे छकड़े पीछे पीछे आ रहे थे। चलते २ उन्हें शोणभद्र नद दिखायी दिया। उस विशाल नदको देखकर श्रीराम परमविस्मित हुए। रात्रि मुनिने वहीं शोण तट पर बितायी। प्रातः वे शोणनद के किनारे २ चले। जहाँ शोण आकर श्रीगंगाजी में मिलते हैं, वहाँ दूसरे दिन उन्होंने डेरा

पत्नी भी किसी उच्चकुल में उत्पन्न परम सुन्दरी है, फिर तुम इसे बेचना क्यों चाहते हो ?"

रोते-रोते राजा बोले—"भाइयो ! तुम मेरा परिचय प्राप्त करना चाहते हो ? तो मेरा परिचय इतना हो पर्याप्त है, कि मैं परम क्रूर पुरुष हूँ। आकृति मेरी पुरुषों की सी है, किन्तु मैं हिंसक क्रूर कर्मा नर पशु हूँ। नहीं तो भला सदा अपने अनुकूल रहने वाली, मुझसे प्राणों से भी अधिक प्यार करने वाली अपनी पत्नी को भला कौन सज्जन पुरुष बेचेगा ?"

महाराज इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतने में ही एक वाचाल ब्राह्मण वहाँ आ गया। उसके त्रिपुण्ड, दुपट्टे, डण्डे को देखकर सभी सहम गये। उसने आते ही पूछा—"क्या बात है ?"

लोगों में से कुछ ने कहा—"ये सज्जन अपनी इस परम सुकुमारी नारी को दासी कर्म के लिये बेचना चाहते हैं।"

ब्राह्मण ने पूछा—"क्या लोगे भाई ! तुम इसका ?"

यह सुनकर राजा का हृदय फटने ही वाला था कि वे सम्हल गये और अत्यन्त ही धैर्य के साथ बोले—"आप जो भी दे दे।"

ब्राह्मण बोला—"मेरी स्त्री अत्यन्त ही सुकुमारी है, उससे घर का काम काज होता ही नहीं। मैं बहुत दिनों से एक दासी की खोज में था, मेरे अनुरूप कोई मिली नहीं। अच्छी बात है, यह मेरे यहाँ काम किया करे। लो, इसके बदले इतना द्रव्य मैं आपको देता हूँ।"

यह कहकर ब्राह्मण ने कुछ सुवर्ण मुद्रायें राजा के वल्कल वस्त्रों में बाँधी और वे रानी का हाथ पकड़ कर ले चले।

हुआ। सहस्रों वर्षों के अनन्तर वे उसे लेकर ब्रह्माजी के समीप गये और बोले—"ब्रह्मन्! यह आपकी न्यास भूता नारी है, इसे आप चाहे जिसे दें।"

उनके शील, सदाचार, संयम से सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी ने कहा—"अच्छी बात है, इसे हम तुम्हें ही देते हैं; अब इसे तुम अपनी धर्मपूर्वक पत्नी बना लो।" पितामह की आज्ञा शिरोधार्य करके मुनि ने वेद की विधि से अहल्या से विवाह कर लिया और सुख पूर्वक रहने लगे। उनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम शतानन्द हुआ। ये ही शतानन्द महाराज जनक के पुरोहित हैं।

अहल्या को जब ब्रह्माजी ने गौतम को दे दिया, तो इससे इन्द्र को बड़ा दुःख हुआ। वह अहल्या के रूप पर अनुरक्त हो गया था। एक दिन जब मुनि जी स्नान करने गये थे, तब इन्द्र गौतम का रूप बनाकर आया और उसने अहल्या के साथ गड़बड़ सड़बड़ की। अहल्या तो समझ गई थी, कि यह मुनि वेपधारी शतक्रतु हैं, किन्तु कुछ बोली नहीं। इतने ही में महामुनि गौतम लौटकर आ गये। उन्होंने योग बल से सब कुछ जान लिया। इन्द्र को उन्होंने शाप दिया कि तुम्हारे शरीर में सहस्र छेद हो जाँय तुम्हारे कोप गिर पड़ें और तुम्हारा इन्द्र पद अस्थायी हो जाय जो बली हो वही इन्द्र पद पर अधिकार जमा ले।" फिर अहल्या को शाप दिया—"तू सहस्रों वर्षों तक बिना अन्न जल के आहार के पाषाणवत् पृथिवी पर पड़ी रहे।"

जब अहल्या ने मुनि की बहुत अनुनय विनय की तब मुनि ने कहा—"मेरा वचन मिथ्या तो हो नहीं सकता। तू वायु का आहार करती हुई सहस्रों वर्षों तक निश्चेष्ट यहाँ पड़ी तो रहेगी, किन्तु जब त्रेता में श्रीराम इस वन में पधारेंगे तब तेरा उद्धार हो जायगा। जब तू उनका स्वागत सत्कार करेगी, तब शुद्ध होकर

जा रहा है, तो उसने कसकर अपनी माँ का पल्ला पकड़ लिया और वह ढाह बाँधकर रोने लगा—माता का भी हृदय भर आया, उसने रोते-रोते कहा—'बेटा ! अब मुझे तुम क्यों छूते हो, अब तो मैं दासी हो गई तुम तो राजवंशोद्भव हो। आज तुम पेट भरके अपनी जननी को निहार लो। अब तुम्हारी माता दासी हो गई है।''

ब्राह्मण ने जब देखा कि करुणा का दृश्य अधिकाधिक बढ़ता ही जाता है, तो उन्होंने डाँटकर रानी से कहा तू चलती है या मोह ममता करती है। यह कह कर उसने रानी को एक धक्का दिया। फिर भी रोहित ने अपनी माँ का पल्ला न छोड़ा वह घिंघिरता हुआ माँ के पीछे हो लिया। ब्राह्मण ने उस बालक को माँ से बलपूर्वक विलग करना चाहा, किन्तु बच्चा और भी अधिक रोने लगा। तब रानी ने अत्यन्त करुण स्वर में कहा—"पिताजी ! यदि आपकी कृपा हो तो आप इस बच्चे को भी मोल ले लें। मेरे बिना यह दुखी रहेगा और इसकी याद में मैं चिन्तित रहूँगी, जिससे आपके घर का काम भी भली भाँति न कर सकूँगी यदि यह रहेगा, तो हम दोनों ही आपके घर के कामों को किया करेंगे।

ब्राह्मण की बुद्धि में यह बात धँस गई। तुरन्त ही कुछ सुवर्ण मुद्रा राजा के वल्कल उत्तरीय मे बाँध कर बोला—'अच्छा लो, इस बच्चे को भी मुझे दे दो।" यह कह कर वह माता और पुत्र को लेकर चल दिया। इधर महाराज हरिश्चन्द्र कटे वृक्ष की भाँति मूर्छित होकर गिर पड़े। रानी बार बार मुड़कर महाराज की ओर निहारती जाती थी। राजा के नेत्रों से निरन्तर अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। वे चिल्ला रहे थे हा प्रिये ! हा वत्स!

श्रीराम को गाढ़ालिङ्गन करते हुए मुनि गौतम बोले—"महाभाग राम ! तुमने आज मेरे आश्रम पर पधार कर अपना भक्त वत्सल नाम सार्थक सिद्ध कर दिया। प्रभो ! आपने मेरी पत्नी पर तथा मेरे ऊपर बड़ी कृपा की। हम पति पत्नी को पुनः मिला दिया। मैं तुम्हें हृदय से आशीर्वाद देता हूँ कि जैसे तुमने त्रैलोक्य सुन्दरी मेरी पत्नीको मुझे मिला दिया है, वैसे ही तुम्हें संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी पत्नी अति शीघ्र मिले।"

यह सुनकर विश्वामित्र और लक्ष्मण हँसने लगे, राम लज्जित हुए। अहल्या ने अपने पति की पूजा की। जब वे पति पत्नी पुनः मिल गये तब श्रीराम उन दोनों से अनुमति लेकर विश्वामित्रजी को आगे करके मिथिला की ओर चले।

चलते समय उन्हें दूर से ही यज्ञ का धूम्र दिखाई देने लगा। बड़े बड़े वन उपवन तथा महल दिखाई देने लगे। श्रीराम ने उत्सुकता के साथ पूछा—"प्रभो ! इन्द्र की अमरावती के समान अत्यन्त ही रमणीक परम सुहावन यह कौनसा नगर है ?"

यह सुनकर अत्यन्त ही प्यार से विश्वामित्र जी ने कहा—"राम ! यही मिथिलापुरी है। महाराज जनक इसी के राजा हैं। उनका राज्य धनधान्य से पूर्ण है। यहाँ भूमि अत्यन्त ही कोमल है। क्यों न हो सीता की जननी ही ठहरी अपनी पुत्री के स्नेह से भूमि अत्यन्त ही मृदु बन गई है, 'कि मेरी दुलारी सुकुमारी प्राणों से भी प्यारी पुत्री को चलने में कोई कष्ट न हो। अब हम कुछ ही काल में जनक के यज्ञ को देखेंगे।" यह सुनकर श्रीराम को परम हर्ष हुआ।

कुछ काल में महामुनि विश्वामित्र जनक के यज्ञ मंडप में पहुँचे। नगर बाहर बड़ा भारी पंडाल बनाया गया था। उसके चारों ओर सुन्दर सजे हुए परिष्कृत पथ थे, किनारे

तब राजा ने कहा—"भगवन् ! मेरी स्त्री मेरा प्यारा पुत्र तो विक गये अब मेरा शरीर शेष रह गया है। अत: आप उसे बेच कर जो मिले उसे लेकर सन्तुष्ट हो जायें।"

मुनि ने कहा—"चाहे जैसे हो, मुझे तो यथेष्ट धन मिलना चाहिये मैं जाता हूँ अब मैं सूर्यास्त के समय ही आऊँगा। यह मेरा अन्तिम आना होगा, उस समय तक आपने मुझे यथेष्ट दक्षिणा दे दी तब तो कोई बात ही नहीं। यदि न दे सके तो मैं तुम्हें शाप देकर भस्म कर दूँगा।"

यह सुनकर राजा मूर्छित हो गये। उन्होंने धर्म का स्मरण करके अपने को सम्हाला। उसी समय वहाँ धर्म चाँडाल आ उपस्थित हुआ। महामुनि ने दुर्वासा के शाप से धर्म को तीन स्थानों में जन्म लेना पड़ा। एक तो युधिष्ठिर के रूप में,एक दासी पुत्र विदुर के रूप में और एक काशी में प्रवीर चाँडाल के रूप में।

महाराज हरिश्चन्द्र अपने को बेचने के लिये चिल्ला रहे थे कि वहाँ प्रवीर चाँडाल आ पहुँचा। उसका शरीर काला था। बाल कड़े और ताम्बे के वर्ण के थे,मुख भयकर और माथा छोटा था, नाक चिपटी हुई, आँखें गोल छोटी पीलापन लिये हुए रूखी और कठोर थी। छाती बड़ी और कड़ी थी, पेट लम्बा था, पैर छोटे थे, चर्म मोटा और भैंसे के समान था। झोली में बहुत से मरे पक्षी भरे थे। मुर्दे के ऊपर के वस्त्रों को पहिने या तथा मुर्दों के ऊपर चढ़ी हुई मालाओं से उसने अलंकार कर रखा था। नरमुण्डों की माला पहिने और हाथ में नरकपाल लिये हुए वह कुत्तों से घिरा निर्भय चला आ रहा था। उसकी देह से दुर्गन्ध निकल रही थी। उसकी आकृति-प्रकृति क्रूर थी। आते ही उसने कहा—"मुझे एक दास की आवश्यकता है यदि

महाराज जनक का वैभव विशाल है। भगवन ! विदेह का यज्ञ तो आश्चर्यजनक है।"

यह सुनकर प्यार से विश्वामित्रजी बोले—"राम भद्र ! मुझे भीड़ भाड़ में आनन्द नहीं आता। हम तो एकान्त में सरिता तट पर अपना डेरा डालेंगे। बोलो, तुम्हारी क्या सम्मति है ?"

हँस कर श्रीराम बोले—"भगवान के सम्मुख मैं क्या सम्मति दे सकता हूँ। हाँ एकान्त में ही अच्छा रहेगा।" यह सुनकर मुनि बिना किसी से मिले एक सघन वाटिका में चले गये। वहाँ जल का सुपास था यज्ञ मंडप से न बहुत दूर था न समीप ही। वहीं विश्वामित्रजी बैठ गये। उसी समय अन्य मुनि भी छकड़ों को लेकर आ गये। बहुत से छकड़ों को देखकर मुनि तथा राज कर्मचारी पूछने लगे—"ये किनके छकड़े हैं। कौन मुनि आये हैं ? उनके साथ कितने महर्षि हैं !"

मुनियों ने बताया—"हम सब भगवान् विश्वामित्र के साथ हैं, वे आगे गये हैं।" यह बात क्षण भर में सम्पूर्ण यज्ञ के मंडप में फैल गई। ऋषिमुनि विश्वामित्रजी का नाम सुनकर दौड़े। यज्ञ के स्वागत सचिव ने जब कौशिक का आगमन सुना तो वह स्वागताध्यक्ष के साथ पैदल ही दौड़े, रथवाला पीछे ही रह गया। सैकड़ों सेवक विविध वस्तुओं को लिये हुए चले। महामुनि विश्वामित्र ने मुनि मंडली को अपनी ओर आते देखकर उठकर उन सबका सत्कार किया। श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयों ने सबकी चरणवन्दना की। इतने ही में राजकर्मचारियों ने आकर भूमि में लोटकर मुनि के पादपद्मों में प्रणाम किया। स्वागताध्यक्ष ने डरते-डरते हाथ जोड़कर कहा—"इधर ४, ५ दिन से भगवान् की नित्य ही प्रतीक्षा हो रही थी। महाराज बार-बार पूछते थे,

इसीलिये अब मैं अपने को भी बेचना चाहता हूँ, यह चाँडाल कहता है, मेरे हाथ बिक जाओ।"

मुनि ने कहा—"बिकना तो तुम्हें है ही, जब यह तुम्हें द्रव्य दे रहा है, तब क्यों नहीं बिक जाते ?"

राजा ने कहा—"भगवन् ! मृतकों के वस्त्रों से आजीविका करना परम निन्दनीय कर्म है। चाँडाल कर्म परम निन्दनीय बताया है। आप मुझे चाँडाल के हाथों क्यों बेचते है ? कहीं अन्यत्र मुझे बेचकर द्रव्य ले लें। या शेष द्रव्य के बदले आप ही जीवन भर मुझे अपना दास बना लें, मैं आपकी सदा सेवा करता रहूंगा।"

मुनि ने कहा—"मेरे पास तो सेवक बहुत है, मुझे सेवकों की कमी नहीं। मुझे तो यथेष्ट द्रव्य चाहिये।"

चाँडाल ने कहा—"द्रव्य तो मैं चाहे जितना दे सकता हूं।"

मुनि बोले—"तब और क्या चाहिये। जाओ मैंने इन्हे तुम्हारे हाथो बेचा। इतनी लाख सुवर्ण मुद्रा तुम मुझे दो।"

चाँडाल ने मुनि का मुहमाँगा द्रव्य उन्हे दे दिया। राजा विवश थे, धर्मपाश में बंधे थे। अत. वे कुछ भी नही कह सके। चाडाल राजा को बाँध कर अपने घर की ओर ले चला। महाराज पशु के समान मुख नीचा किये हुए चाँडाल के साथ चले गये। उन्होने राजा होकर भारी से भारी अपमान, बड़े से बड़ा कष्ट सहन करना तो स्वीकार किया, किन्तु सत्य धर्म को छोड़ने की बात उनके मन में भी नही आई। वे धर्मपाश मे जकड़े हुए थे, चाँडाल उन्हें अपने घर ले गया।

सामान लिये हुए व्यग्रता के साथ महाराज आ रहे थे। शतानन्द जी के साथ महाराज को देखकर विश्वामित्र जी खड़े हो गये। शतानन्दजी ने ज्योंही आगे बढ़कर मुनि के पैर छूने चाहे त्योंही मुनि ने उन्हें गले से लगा लिया। राजा ने भूमि में लोटकर मुनि को प्रणाम किया। फिर मुनि के लिये तथा समस्त मुनियों के लिये सुन्दर आसन दिये। राजा ने मुनि की विधिवत् पूजा की। विशेष अर्घ्य दिया। मुनि ने राजा के परिवार राज्य, सचिव सेना आदि की कुशल पूछी। दोनों से कुशल प्रश्न और शिष्टाचार हो जाने के अनन्तर राजा जनक ने हाथ जोड़कर पूछा—"ब्रह्मन् ! ये जो आपके समीप कामदेव के समान अश्विनी कुमारों से भी सुन्दर दो किशोर वय वाले विलक्षण बालक बैठे हैं ये कौन हैं ? ये कोई देवकुमार हैं या विद्याधरों के बालक हैं। मनुष्यों में तो मैंने ऐसा सौंदर्य देखा नहीं। इनके बाल तो राजकुमारों के से कटे हैं। वस्त्र भी ये मनुष्यों के पहिने हैं। विशाल धनुष को देखकर ये क्षत्रिय कुमार प्रतीत होते हैं, इनकी विनय, उठन-बैठन सब ऋषिकुमारों की सी है। शील संकोच में से ये परम कुलीन जान पड़ते हैं। मैं इनका परिचय पाने को बड़ा उत्सुक हूँ। मेरे मन में ऐसा लगता है ये मेरे इष्ट हैं। मेरा मन स्वतः ही इनकी ओर आकर्षित हो रहा है ?"

यह सुनकर विश्वामित्र जी हँस पड़े। राम सकुचा गये। उनके नेत्र नीचे हो गये। मुनि ने राम की ठोढ़ी में हाथ रखकर कहा—"बताओ भाई, तुम कौन हो ? अपना परिचय दो।"

राम और भी अधिक संकोच में पड़ गये। उनकी संकोचमयी अति सुहावनी परम मनभावनी मूर्ति को निरखकर जनक आत्मविस्मृत हो गये। राम का वह संकोचयुक्त स्वरूप त्रैलोक्य को मोहने वाला था।

शवो की दुर्गन्ध से वह स्थान भरा रहता था। चारों ओर हड्डियाँ बिखरी रहती थी, बहुत सी खोपड़ियाँ इधर उधर टकराती रहती थी। बड़ेबड़े कछुए मृतक शरीरो के मांस को खाने के लिए किनारो पर मुँह निकाले पड़े रहते थे। आधे जले या वैसे ही पडे मृतको को सियार चोथते रहते थे। बहुत से मृतक शरीर सड जाते, उनमे से दुर्गन्ध निकलती रहती, उन्हें कुत्ते सियार गीदड भी नही खाते थे, उन्हे पास से महाराज को फेंकना पड़ता कुछ जले कुछ अधजले मृतकों को खींच कर मोटे मोटे कुत्ते खाते रहते। बहुत से गिद्ध काक अपने परों को फटफटाते भयकर शब्द करते इधर से उधर दौड़ते रहते। भूत, प्रेत, पिशाच, वेताल, डाकिनी, साकिनी, आदि वायु के आधार से रहने वाले सूक्ष्म शरीर के प्राणी वहां के वृक्षों पर रहकर हँसते खेलते और भयकर शब्द करते थे। वहाँ निरन्तर लोग आते जाते रहते थे। किसी का पुत्र मर गया है, तो उसके परिजन हा! पुत्र! हा! मेरे लाल! कह कर डकरा रहे है, कोई अपने मित्र का नाम लेकर रो रहा है, कोई माता पिता के लिए आँसू बहा रहा है, कोई स्त्री के वियोग मे तड़प रहा है, कोई सन्तान के मरने पर बिलबिला रहा है, चारों ओर करुण क्रन्दन ही क्रन्दन सुनाई पड़ता था। वहाँ निद्रा किसी प्रकार भी नही आ सकती थी। कभी कभी मांस भोजी पशु पक्षी महाराज को सोता देखकर उन्हें भी मृतक समझ कर काट लेते। महाराज तत्क्षण उठ बैठते कोई भी मृतक आता, किसी भी समय आता, महाराज तुरन्त उठकर जाते, उसे अग्नि देते, पैसा लेते और उसके ऊपर के वस्त्र को लेकर सुरक्षित रखते। उन्हें इस बात का सर्वदा ध्यान रहता था, कि मेरे स्वामी चांडाल का काम सावधानी से होना चाहिये। उसमें छल, कपट या प्रवञ्चना न होने पावे।

इस प्रकार उस अत्यंत भयंकर श्मशान भूमि मे जिस किसी

हैं, वे क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये। एक ही जन्म में घोर तपस्या के द्वारा वर्ण का विपर्यय होना यह तो असम्भव कार्य है। मेरी भी उन मुनि के दर्शनों की बड़ी इच्छा है और साथ ही मैं उनके साथ इसी मिससे श्रीराम के भी भली भाँति दर्शन कर लूँगी। यदि आप उन्हें किसी प्रकार अतःपुर में बुला सकें तब तो मेरी मनोकामना पूर्ण हो सके।"

राजा बोले—प्रिये ! वे बहुत बड़े महर्षि हैं, मेरा साहस तो होता नहीं। तुम शतानन्दजी को उनके समीप भेजो। यदि वे इस प्रार्थना को स्वीकार कर लें, तब तो मेरा महल पवित्र हो जायगा। मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।"

रानी ने तुरन्त अपने कुलपुरोहित गौतमजी के पुत्र शतानन्द जी को बुलाया और उनसे विश्वामित्र को श्रीराम लक्ष्मणके सहित महलों में पधारने की प्रार्थना करने को कहा। रानी के कहने से शतानन्दजी तुरन्त फिर वहाँ गये।

जनकनन्दिनी सीता ने भी पिता के मुख से श्रीराम के अपार सौंदर्य और लोकाभिराम रूप की बात सुनी, तो उसके मन में भी राम के प्रति स्वाभाविक अनुराग हो गया। वह भी उस रूपराशि को देखने के लिए व्याकुल हो उठी। उसे ऐसा लगा मानों मुझे कोई खोई वस्तु मिलनेवाली है, मुझे मेरे हृदय का धन प्राप्त होने वाला है।

इधर शतानन्दजी को पुनः आये हुए देखकर विश्वामित्रजी ने श्रीराम से उनका विशेष परिचय कराया और बोले "राम ! तुमने जिस अहल्या देवी का उद्धार किया है, उन्हीं के ये शतानन्द जी पुत्र हैं। भगवन् गौतम ऐसे योग्य पुत्र से यथार्थ पुत्रवान् हुए हैं।"

अपनी माता के उद्धार की बात सुनकर शतानन्दजी परम

साथ ही मृतक के ऊपर का नवीन वस्त्र भी। यही सोचकर उन्हों ने अपना चाडालों का डंड उठाया और उधर की ही ओर चले।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! प्राचीन काल में सभी के वेष-भूषा चिन्ह पृथक पृथक होते थे, उसे ही देखकर सब जान लेते

प्रातःकाल हुआ। महारानी ने आज अपनी प्यारी दुलारी सीता को उबटन लगाकर विधिवत् महौषधि दिव्योपधियों के जलों से स्नान कराया। विविध प्रकार के वस्त्राभूषणों से उसे सजाया मुनि के स्वागत के लिये भाँति भाँति के कुरकुरे मुरमुरे लुचलुचे खट्टे-मीठे चरपरे आदि षट्रस युक्त छप्पन व्यंजन बनवाये और मुनि को लाने के लिए महाराज ने दिव्य रथ भेजा।

उस समय सीता की दशा विचित्र थी उसको कोई भी कवि अंकित करने में असमर्थ है, उसका हृदय धक् धक कर रहा था। आशा, निराशा, अभिलाषा, प्रतीक्षा, उत्सुकता, मिलन, भय, संकोच सभी भाव आते चले जाते। चल चित्रों की भाँति उनके हृदय पटल पर भाव रेखाओं के विविध चित्रण होते और पुनः विलीन हो जाते। प्रतीक्षा में पल पल भारी हो जाता है, रानी बार बार दासी को चित्रसारी पर भेजतीं और रथ आता है या नहीं इसके सम्बन्ध में पूछतीं।

सहसा उन्हें रथ की घरघराहट सुनाई दी। उसका हृदय धड़कने लगा। द्वार पर महाराज ने मुनि का स्वागत किया और वे रामलक्ष्मण के सहित मुनि को भीतर ले गये। राजा आगे-आगे मार्ग दिखा रहे थे मुनि के दायें बायें राम लक्ष्मण चल रहे थे। कभी-कभी मुनि राम के कन्धे पर हाथ रख देते और हँसकर कुछ बात कह देते। आज मुनि का मुख चमक रहा था वे बात बात पर हँस जाते। इसके विपरीत राम आज गम्भीर हो गये थे। उनका सकोची स्वभाव न जाने क्यों आज पराकाष्टा पर पहुँच गया था आज वे बोलते ही नहीं थे। मुनि के कुछ पूछने पर सिर हिलाकर हाँ ना का संकेत कर देते।

महाराज जनक के ऐसे वैभव को देखकर राम पग पग पर

मेरे राजर्षि पति न जाने कहाँ भटक रहे होंगे, तू मुझे बीच में ही छोड़ गया। हाय मेरा हृदय न जाने किन किन धातुओं के मिश्रण से बना है, जो इतनी भारी विपत्तियों के आने पर भी फटता नहीं, इसके टुकड़े-टुकड़े नहीं होते।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियों! अब तो महाराज को कोई सन्देह रहा नही। वे धड़ाम से पृथिवी पर गिर पड़े। उनके चोट लगी, किन्तु इसका उन्हें कुछ पता नही। वे हा पुत्र हा पुत्र कह कर मुक्त कंठ से रुदन करने लगे।"

महारानी शैव्या रो रही थीं डर रही थी। वे पुत्र शोक से विह्वल बनी हुई थीं, उन्हें यह भी ध्यान नही था, यह मेरे पास कौन पुत्र, पुत्र चिल्ला रहा है। वे समझी ये भी कोई मेरे ही समान हतभागी होंगे, इनका भी पुत्र मर गया होगा। राजा बड़ी देर तक मूर्छित अवस्था मे पड़े रहे। कुछ काल में उन्हें चेतना हुई। उन्होंने दौड़ कर बच्चे को उठा लिया और कस-कर छाती से चिपटाते हुए कहने लगे—'मेरे लाल! मेरे वत्स रोहित। भैया, सब ने मुझे छोड़ दिया। तू भी मुझे छोड़ कर परलोक जा रहा है क्या? मुझे भी अपने साथ ले चल अब मैं तेरे बिना इस पृथिवी पर रह नही सकता।"

रानी ने जब महाराज की वाणी सुनीं तब तो उन्हें भी निश्चय हो गया, मेरे प्राणनाथ ही हैं। इतने देर से महाराज खड़े थे। रानी ने कई बार उन्हें देखा, किन्तु वे उन्हें पहिचान न सकीं। उन्होंने उनके मस्तक पर छत्र तना देखा था। काले—काले घुँघुराले बालों को फहराते मुखमंडल पर निहारा था। आज उनके मस्तक पर रूखी-रूखी भयंकर जटायें थीं, जो चिता के धूँए से या लपटों से सुनहली और धूमिल बन गई थीं। उनका

ने दोनों को गोद में लिया उनका सिर सूंघा और आशीर्वाद दिया तुम चिरजीवी हो। विवाह हो, वहू आवे बच्चे हों।" मुनि हँसने लगे। राम लक्ष्मण लज्जित हुए।

रानी ने पूछा—"तुम लोग अवध नरेश के पुत्र हो न ?"

श्रीरामने कहा—"हाँ, माता जी!" इतना कहकर दोनों फिर मुनि के समीप आ बैठे। सीताजी ने साहस करके एक बार फिर श्रीराम को देखा। वे अपलक उनके मुख चन्द्रकी सुधाका पान कर रहीं थीं कि रामने भी दृष्टि बचाकर उनकी ओर देखा। सहसा आँखें चार हो गईं। सीताजी ने अपनी दृष्टि नीची करली। राम भी डरे हुए से मुनिकी ओर देखने लगे मानों कोई चोर शंका से निहार रहा है।

रानी ने कहा—"भगवन्! आप इन इतने सुकुमार बच्चों को इनके माता पिता के समीप से क्यों ले आये हैं।"

मुनिने कहा—"मैं इन्हें शक्तिमान् बनाने के लिये लाया हूँ। विना कष्ट सहे शक्तिकी प्राप्ति नहीं होती। सहिष्णुही सिद्धि को प्राप्तकर सकता है।" यह सुनकर रानी ने कुछ भी नहीं कहा। सेविका ने कहा प्रसाद तैयार है।

रानी ने कहा—"भगवन् पधारें और प्रसाद पावें।" यह सुनकर विश्वामित्रजी उठे। रानी ने मुनिके चरण धोये रानी ने श्रीराम लक्ष्मण के भी चरण धोने चाहे किन्तु उन्होंने धोने ही नहीं दिये स्वयं ही पात्र लेकर पाद प्रक्षालन कर लिये। तीन दिव्य आसन विछाये गये, जिन पर राम लक्ष्मण और श्री विश्वामित्र बैठ गये। रानी ने स्वयं लाकर सोने चाँदियों के थालों और कटोरियों में भाँति-भाँति के व्यंजन परसे। सीताजी अपने सिर को सावधानी से ढककर दासियों की सहायता से वस्तुओं को लाकर अपनी माता को देती जाती थीं। माता उन्हें

नाथ को चांडाल वेष में देख कर मेरा हृदय फटता क्यों नहीं। इसके टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं होते।"

इतना कह कर महारानी दोनों हाथों से अपनी छाती को धुनने लगी, बालों को नोचने लगी और नखों से अपने अंगों को काटने लगी।

महाराज ने रानी की जब ऐसी विक्षिप्तावस्था देखी तो उन्होंने उन्हें पकड़ लिया। अब वे भूल गये कि मुझे रानी को छूना नहीं चाहिये। उन्होंने अपनी प्रियतमा शैव्या को हृदय से लगा लिया। रानी पुत्र शोक को भूल गई थीं। अब उन्हें रह रह कर पति के चांडाल होने की वेदना थी।

अर्ध रात्रि का समय था, सम्पूर्ण संसार सो रहा था। श्मशान भूमि की भयंकरता और भी बढ़ गई थी। कुत्ते सो रहे थे, सियार इधर-उधर मांस के लिये घूम रहे थे। कुछ काल पहिले जो लोग मृतक को जलाने आये थे वे भी चले गये थे। चिताओं का धूआं भरा हुआ था, श्मशान भूमि में तीन ही थे। राजा रानी और मृतक कुमार।

महाराज ने कुमार को गोद में लिटा लिया, महारानी के सिर पर हाथ रख कर उन्होंने उनके अपने मैले वस्त्र से आंसू पोंछे और कहा—"प्रिये! तुम अधीर मत होओ। हमने कोई पाप नहीं किया है, हमने जो भी कुछ किया है, धर्मरक्षा के ही निमित्त किया है?"

रानी ने कहा—"प्राणनाथ! आपको यह चांडालपना कैसे प्राप्त हुआ?"

कुमारों को तो ऐसा भोजन रुचिकर क्यों होगा। ये चक्रवर्ती महाराज के कुमार हैं, हम लोग साधारण व्यक्ति हैं।"

इस पर लक्ष्मण बोले—"यदि साधारण व्यक्ति ऐसे ही होते हैं तो ऐसी साधारणता तो सभी चाहेंगे।" यह सुनकर मुनि हँस पड़े। रानी भी हँस पड़ीं हँसी की ध्वनि सुनकर राम चौंक पड़े। उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। उन्हें संदेह हुआ मुनि मेरे मनो भावों को देखकर हँस रहे हैं। उसी समय सीताजी आईं। शीघ्रता से श्रीराम ने अपनी दृष्टि हटाई। सिर नीचा करके प्रसाद पाने लगे।

रानी विश्वामित्र से धनुष के सम्बन्ध में बातें कर रहीं थीं। उसी समय उन्होंने सीताजीजी से कहा—"बेटी! जा पूड़ी परोस दे।"

सीताजी सकपकाईं। उन्होंने जाने में आनाकानी की, किन्तु माता ने प्रेमपूर्वक घुड़कते हुए कहा—"तू बड़ी पागल है री सीता जा, परस।" अब क्या करतीं सीताजी। पूड़ियों का छोटा सा पात्र लेकर उसने दो पूड़ी मुनि के सम्मुख डालीं। मना करते रहने पर भी शीघ्रता से दो लक्ष्मणजी के थाल में डाल गई। श्रीराम के सम्मुख जहाँ पहुँचीं। रामने जहाँ दृष्टि उठाकर देखा, जहाँ दृष्टि से दृष्टि मिलीं, जनकनन्दिनी तो स्तब्धसी हो गईं, तदाकार अचल प्रतिमा के समान बन गईं, हाथ से पूड़ियों का पात्र गिरना ही चाहता था, कि दौड़कर रानी ने पकड़ लिया और मीठी घुड़की देते हुए बोली—"सीता! तू इतनी बड़ी हो गई तुझे तनिक भी बुद्धि नहीं आई। चल, हट तुझसे कुछ भी न होगा।" यह सुनकर बड़प्पन के स्वर में दाढ़ी हिलाते हुए मुनिने कहा—"कोई बात नहीं, अभी बच्ची ही तो है। सकुचाती है।" सीताजी यह सुनकर खोईसी कुछ गँवाईसी शीघ्रता से भाग गईं।

समय अग्नि की साक्षी देकर मेरा हाथ पकड़ा था। उसी प्रकार चिता पर भी मेरा हाथ पकड़े ही हुये चढें।"

राजा ने कहा—"अच्छी बात है, कल्याणि ! जब तुमने ऐसा ही निश्चय किया है, तो हम इस विश्वनाथ की पुरी से भी उसी प्रकार साथ चले जिस प्रकार अयोध्या पुरी से साथ चले थे। यह कह कर महाराज ने एक बड़ी सी चिता स्वयं बनाई। उसके ऊपर कुमार रोहित के मृतक शरीर को रखा।

रानी के सहित उन्होंने चिता की प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए गद्-गद् कण्ठ से कहने लगे—"हे अशरण शरण ! प्रभो ! मैंने जो भी कुछ किया है, धर्म की रक्षा के निमित्त किया है। हे चराचर के स्वामी विश्वम्भर ! आपके अनन्त नाम हैं, धर्म ही आपका नाम है सत्य ही आपका स्वरूप है। आप आनन्द घन तथा चैतन्यस्वरूप है। आपको हृदय में धारण करके ही मैं इस शरीर का अन्त करना चाहता हूँ।" इस प्रकार स्तुति करके महाराज ज्यों ही चिता पर चढ़ने को उद्यत हुए। त्योंही साक्षात् चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा वहाँ प्रकट हुए। उनके पीछे इन्द्र, वरुण, कुवेर, धर्म, साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण, नाग, सिद्ध, गन्धर्व एकादशी दोनों अश्विनीकुमार तथा अन्यान्य देवगण भी थे। आते ही देवताओ के राजा इन्द्र ने कहा—"राजन् ! आप ऐसा साहस न करे, आपने अपने सत्यधर्म के प्रभाव से अक्षय लोकोंको जीत लिया है। ये सम्पूर्ण ब्रह्माड के अधीश्वर लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा जी समस्त देवताओं के सहित इन्हें दर्शन देने आये है। इनके समीप ही ये महर्षि विश्वामित्र भी खड़े हैं। इन्होने क्रोधवश लोभवश तुम्हारा सर्वस्व अपहरण नहीं किया था आप जेसा सत्यवादी

धनुष तो वे ही चढ़ावेंगे, सीता के साथ वे ही विवाह करेंगे। यह बात तो मुझसे अनेकों ऋषि मुनि तथा ज्योतिषियों ने बताई है। फिर भी लोक दिखावे को, अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने को, मुझे स्वयम्वर रचना ही होगा। ऐसा न करूँगा तो मेरी मर्यादा नष्ट होगी।"

रानी ने कहा—"आप चाहे जो करें, सीता का विवाह तो मैं राम के ही साथ करूँगी, यदि ऐसा न हुआ, तो मैं सीता को लेकर या तो जल में डूब मरूँगी या विष खा लूँगी। मेरे मन में तो राम बस गये हैं। मेरे रोम रोम में तो राम रम गये हैं। मेरी प्यारी दुलारी पुत्री किसी की ओर आँख उठाकर भी न देखेगी।"

किवाड़ की आड़ में से माता पिता की बातों को सीता सुन रही थीं। उनका हृदय धक् धक् कर रहा था, वह बाँसों उछल रहा था। राम का प्रेम रोम रोम से उमड़ रहा था राम के मिलने के लिये हृदय तड़प रहा था। राम के नाम से उनका हृदय कमल खिल रहा था। वे संज्ञा शून्य हुई माता को कोटि कोटि धन्यवाद दे रही थीं और पिता के हठ पर खीझ रही थीं।

महर्षि विश्वामित्र की सम्मति से स्वयम्वर निश्चय हो गया। तुरन्त शीघ्रगामी दूत इधर उधर पठाये गये। यज्ञ का कार्य बड़ी धूम से आरम्भ हुआ महाराज पत्नी के सहित मृग का चर्म ओढ़ कर मृग के सींग को हाथ में लेकर यज्ञ में दीक्षित हुए। स्वाहा स्वाहा की सुमधुर ध्वनि से आकाश मंडल गूँज उठा।

इधर श्रीराम की दशा विचित्र थी। वे गुरु के सम्मुख अपने भावों को बहुत छिपाते थे, किन्तु प्रेम छिपाये से नहीं छिपता। राम बार बार लक्ष्मण से पूछते—"भैया! उस शिव धनुष को

पूर्वक स्वर्ग जायें। धर्म की अधीनता अधीनता नही। धर्म के लिये उठाया जाने वाला कष्ट कष्ट नही है। धर्म के लिये होने वाला अपमान अपमान नही है। जो मुझ धर्म की रक्षा करता है, उसकी मैं भी सदा रक्षा करता हूँ। आप सुख पूर्वक स्वर्गादि लोकों को जाकर वहाँ दिव्य सुखों को भोगें।"

इस पर इन्द्र बोले—"हाँ, महाराज! चलिये अब तो आप जिनके अधीन थे, उन्होंने भी आपको आज्ञा दे दी।"

तब महाराज हरिश्चन्द्र बोले—"देवेन्द्र आपकी बड़ी कृपा है। मैं अकेले स्वर्ग नहीं चाहता। मैं स्वार्थी नही कि स्वय ही स्वर्गीय सुखों को भोगूँ। मैं तो प्रजा का सेवक हूँ। अयोध्या की मेरी समस्त प्रजा मेरे वियोग मे तड़प रही है, मैं उसे दुःखी छोड़कर अकेला स्वर्ग नही जा सकता। आप सबको स्वर्ग ले चलें तो मैं चलूँ।"

यह सुन कर शचीपति देवेन्द्र हँस पड़े और बोले—"महाराज अब भी आपके हृदय में प्रजा का अनुराग ज्यों का त्यों बना है इसीसे विदित होता है आप सच्चे नरपति है—आपका कल्याण हो। आइये मेरे साथ विमान पर विराजिये, ये बाबा विश्वामित्र भी यहीं विराजमान् हैं। ये आपके स्वामी धर्म भी साथ ही है। आइये मुझे कृतार्थ कीजिये।"

सूतजी कहते हैं—मुनियो! देवेन्द्र के इतना कहते ही महाराज का शरीर दिव्य हो गया, वे वस्त्राभूषणों से अलंकृत दूसरे देवेन्द्र से प्रतीत होने लगे। महारानी शैब्या भी पहिली जैसी ही रूपवती हो गई। वे महाराज की बगल में खड़ी हुई, शची के समान दिखाई देती थीं। कुमार भी हँसते हुए महारानी

चमकीले सुन्दर सजे हुए मंचों पर विचित्र वेप बनाये, नान

भाँति के शृंगार किये हुए सीता की अभिलाषा से राजा औ

वाहुक पुत्र महाराज सगर

(६३८)

हरितो रोहितसुतश्चम्पस्माद्विनिर्मिता ।
चम्पापुरीं सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥
भरुकस्तत्सुतस्तस्माद् वृकस्तयापि बाहुकः ।
सोऽरिभिहृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥*
(श्री भा० ६ स्क० ८ अ० १,२ श्लोक)

छप्पय

तन धन सरवसु तज्यो धर्म हरिचन्द न छोरचो ।
परी विपति पै विपति नहीं सत तैं मुख मोरचो ॥
गये नृपति बैकुण्ठ भये रोहित नृप श्रीयुत ।
रोहित के सुत हरित हरित के चम्प भये सुत ॥
चम्प नृपति चम्पापुरी रचीं वीरवर तिन तनय ।
नृप सुदेव है विदित जग, भये तासु सुत नृप विजय ॥

भगवान् जिसकी रक्षा करना चाहते हैं जिसका जीवन चाहते हैं, वह चाहे धधकती अग्नि में कूद पड़े, पर्वत से गिर

---

*श्रीशुकदेव जी कहते हैं–"राजन् ! हरिश्चन्द्र सुत रोहित हुए रोहित के हरित उसके चम्प हुए जिन्हों ने चम्पापुरी को बसाया । चम्प के सुत सुदेव हुए उनके आत्मज विजय हुए । विजय के भरुक और भरुक के वृक हुए । महाराज वृक के ही पुत्र बाहुक हुए जिनकी पृथिवी को शत्रुओं ने छीन लिया इसलिये वे अपने पत्नियों सहित वन में चले गये ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब सभी अपने अपने बल पराक्रम की परीक्षा कर चुके तब गुरु की आज्ञा से सहज स्वभाव श्रीराम उठे। उन्होंने गुरु चरणों में प्रणाम किया। मुनि मंडली की ओर सिर झुकाया। वे आगे बढ़े। गुरु ने कहा—"रामभद्र! भैया! फेंट तो बाँध लो। तुम उस धनुप को उठाने जा रहे हो जिसे अभी तुम्हारे सम्मुख ३०० आदमी हू हू शब्द करते हुए बड़ी कठिनता से लाये थे।"

गुरु की आज्ञा समझकर श्रीराम ने फेंट बाँधी वे सिंह शावक की भाँति महागजराज के सदृश बढ़े उस धनुप के निकट पहुँचे। अटारियों और छज्जों पर बैठी हुई स्त्रियाँ हा हा करके चिल्ला उठीं—"हाय ! ये कितने सुकुमार कुमार हैं, इस कठिन धनुप को ये कैसे तोड़ सकेंगे ! राम ने एक सूक्ष्म की दृष्टि उधर निहारी उन्हें माता की बगल में हरी साड़ी पहिने जनक नन्दिनी दिखाई दीं। वे अपने बड़े २ नेत्रों से भयभीत हुई मृगी की भाँति धनुप को देखकर घबरा सी रही थीं। प्रणत भय भंजन भक्त वत्सल राम को जनक दुलारी की दयनीय दशा पर दया आई। उन्होंने बिना प्रयास के सरलता के साथ शिव धनुप को छुआ, पकड़ा, उठाया, खींचा, डोरी चढ़ाया और पड़ाक से बीच से उसके दो टुकड़े कर दिया। सहस्रों बाजे एक साथ बजने लगे। आकाश से देवता पुष्प बर्षाने लगे दुन्दुभि बजने लगी। अप्सरायें नाचने लगीं। गन्धर्व गाने लगे ऋषि मुनि जयघोप करने लगे बन्दी गण विरुदावली बखान करने लगे। सर्वत्र आनन्द का समुद्र उमड़ने लगा। द्वेषी राजाओं का हृदय फटने लगा। वे डाह से जलने लगे। जनक की निन्दा करने लगे। राम ने धनुप के टूटे हुए दोनों टुकड़ों को सीता की ओर देखकर उधर घुमाकर धड़ाम से धरती पर डाल दिया। और वे सरलता के गुरु से समीप जा बैठे।

चलकर एक घोर अरण्य के दूसरे किले में निकलती थी। महराज रात्रि भर चलकर उस किले में पहुँचे। वहाँ से समीप ही महर्षि और्व का सुन्दर आश्रम था। रानियों सहित महाराज मुनि के आश्रम पर पहुँचे। मुनि ने पत्नियों सहित महाराज का स्वागत किया और सभी को ठहरने के लिये स्थान दिया।

राजा ने कहा—"ब्रह्मन्? शत्रुओं ने मेरी समस्त पृथिवी *छीन ली है,अब मैं राज्य हीन होकर आपकी शरण में आया हूँ।* मुनि ने कहा—राजन् पृथिवी कभी किसी की हुई भी है या आपकी ही होगी? इस पृथिवी पर कितने कितने बड़े प्रतापी राजा हुए। मेरी मेरी कह कर न जाने वे कहाँ चले गये महाराज! आप जैसे साधु स्वभाव के राजा इस पृथिवी की रक्षा नही कर सकते। पृथिवी का पालन तो समरप्रिय शूरवीर भूप ही कर सकते है। आप यहाँ अरण्य में रहकर भगवान् का आराधन कीजिये, योग साधन कीजिये। आपके वंश में कोई ऐसा प्रतापी राजा होगा जो अपने पूर्वजों के गये हुए राज्य को लौटा लेगा।"

राजा ने कहा—"ब्रह्मन्! अब तो मैं आपकी शरण में आ गया हूँ, आप जो चाहें सो करें। जब तक मनुष्य को धनमद-राज्यमद या ऐश्वर्य का मद रहता है। तब तक वह अपने सामने किसी को कुछ नही समझता। जब उसका मद चूर हो जाता है, तब वह सब ओर से हताश होकर साधु शरण में जाता है, साधु के समीप सभी को आश्रय मिलता है, सभी को त्राण मिलता है। जिनके कोई बन्धु नही उनके साधु बन्धु हैं, जिनका कोई सहारा नही उनके साधु ही सहारे है, जिनका कोई रक्षक नहीं उनके साधु ही रक्षक हैं। साधु ही ईश्वर हैं साधु ही सबके सच्चे हितैषी है।"

तिनका मानकर तोड़ कर जनक नन्दिनी के ऊपर वार कर फेंक दिया।

पाँचवाँ कारण यह भी हो सकता है। सीता सोच रही थी, जैसे मैं श्रीराम के लिये व्याकुल हूँ, वैसे वे मेरे लिये व्याकुल हैं क्या! उनके इस संदेह को दूर करने के लिये राम ने धनुष के बराबर दो खण्ड करके जता दिया था, जितनी ही तुम मेरे लिये समुत्सुक हो उतना ही मैं भी तुम्हारे लिये उत्सुक हूँ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उसके अतिरिक्त भी धनुष तोड़ने के बहुत से कारण हो सकते हैं, जिनके कहने से कथा बढ़ जायगी और आगे का रामचरित रुक जायगा। इस प्रकार धनुष के तोड़ने पर सब को बड़ी प्रसन्नता हुई। सबके सन्मुख निश्चय हो गया कि सीताजी का विवाह श्रीराम के साथ होगा। रनिवास में सूचना दी गई। हाथ में जयमाला लिये हुए सखियों से घिरी जनक नन्दिनी आई और उन्होंने लजाते हुए हृदय मे हरपाते हुए कम्पित करों से श्रीराम के कंठ में जयमाला डाल दी। बाजों की ध्वनि से और कोई शब्द सुनाई न देता था। "सियावर रामचन्द्र की जय।"

छप्पय

मग महँ गौतमनारि तारि मिथिलापुर आये।
राम सहित मुनि पूजि जनक निज महलनि लाये॥
राम निहारी सीय हियेमहँ तुरत छिपाई।
निरखे सीता राम मनहुँ खोई निधि पाई॥
भूप स्वयम्वर सीय हित, रच्यो शम्भु धनु धरि दयो।
तोरि धनुष सिय वर बने, शतानंद नृपप्रन कह्यो॥

उन्हें खुल कर द्वेष करने का अवसर मिल गया। इस बातसे उन्हें और भी दुःख हुआ, कि यह गर्भवती है, यदि इसके पुत्र हो गया, तो यह राजमाता हो जायगी, इसका बच्चा बड़ा होकर राजा हो गया, तो हम सब को दाइयो की भाँति रहना होगा।" यही सब सोच कर सब ने सम्मति की कि हत्या की जड़ यह गर्भस्थ बालक ही है, यदि किसी प्रकार रानी को विष दे दिया जाय, तो गर्भस्थ बच्चा भी मर जायगा और हमारी सौत यह रानी भी मर जायगी। यह सोचकर उन्होंने बड़ी युक्ति से किसी मोदक आदि मे रानी को विष दे दिया।

रानी तो भोली भाली थी, उसे अपने क्रूर कर्म करने वाली सौतों के षड्यन्त्र का कुछ भी पता नही था।

जब वह नित्य नियमानुसार भगवान् और्व को प्रणाम करने गई, तो मुनि ने आशिर्वाद दिया, पुत्रवती हो, सम्राट को जनने वाली हो।" फिर मुनि ने ध्यान से जो देखा तो उन्हे विष देने की बात विदित हो गई। इसलिये उन्होंने कहा—"कोई बात नहीं जो वस्तु पेट में है वह बिना जीर्ण हुए ज्यों की त्यों बनी रहेगी।"

शुकदेव जी कहते है—"राजन्! कुछ कालके पश्चात् परलोक वासी महाराज बाहुक की पत्नी ने पुत्र प्रसव किया। पुत्र के साथ ही वह गर (विष) भी उत्पन्न हुआ जिसे रानी की सौतों ने उसे भोजन के साथ दे दिया था। पुत्र गर के साथ उत्पन्न हुआ इसलिये महामुनि और्व ने उसका नाम सगर रखा। मुनि ने बालक के सभी क्षत्रियोचित जातिकर्ण नाम कर्ण आदि संस्कार कराये। शनैः शनैः वह बालक मुनि आश्रम

निराश ही होता है। आशा निराशा के बीच में वह गोता लगाता रहता है। जब अपना प्रेमी प्राप्त हो जाता है, प्रतीक्षा सम्मिलन में परिणित हो जाती है तब तो फिर कहना ही क्या तिनका तिनके तैं मिला, तिनका तिनके पास।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! धनुष भङ्ग हो जाने पर महाराज जनक सपरिवार बड़े ही प्रसन्न हुए। जानकी की प्रसन्नता तो अवर्णनीय ही थी। जनक ने सब भूपतियों के सम्मुख हाथ जोड़ कर भरी सभा में महर्षि विश्वामित्र की चरण वन्दना करके कहा—"प्रभो! श्रीराम के धनुष चढ़ाकर तोड़ते ही न्यायानुसार मेरी पुत्री जानकी उनकी पत्नी हो गई फिर भी भगवान्! लोकाचार और वेदाचर करना ही है। आपकी आज्ञा हो, तो चक्रवर्ती महाराज दशरथ को मैं दूतों को भेजकर यहाँ बुलवालूँ; जिससे वैदिक विधि से सीता का विवाह श्रीराघव के साथ हो जाय।"

मुनि बोले—"राजन्! आपका विचार बहुत उत्तम है। अभी अविलम्ब शीघ्रगामी दूत अवधपुरी पठाइये और जितनी भी शीघ्रता से महाराज दशरथ आ सकें उन्हें बुलवाइये।"

मुनि की आज्ञा पाकर राजा ने शीघ्रगामी दूतों को बुलाया। वे वायु के वेग के समान दौड़ने वाले अश्वोंपर सवार होकर अवधपुरी को चले तीन दिन में वे मिथिला से अयोध्यापुरी पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने नियमानुसार अभिवादन प्रणाम करके महाराज की ओर से कुशल पूछी और श्रीराम के जनकपुर पधारने से धनुषभंग तक की सब कथा सुनाकर राजा का सन्देश कह सुनाया।

अपने पुत्रों का कुशल समाचार सुनकर तथा उनकी वीरता शूरता की बात सुनकर महाराज के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। प्रेम के कारण उनका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो गया और

इसलिये महाराज सगर ने एक मर्यादा बाँधदी । ताल,जघ यवन, शक, हैहय और बर्बर जाति के लोग वर्णाश्रम धर्म में न रह सकेंगे । यद्यपि पहिले ये लोग क्षत्रिय ही थे, किन्तु अत्यन्त धर्म विरुद्ध आचरण करने से उन्हें समाज से वहिष्कृत कर दिया । महाराज ने उनको आज्ञा दी कि तुम एक विशेष चिन्ह रखा करो जिससे लोग समझ जायँ कि तुम समाज वहिष्कृत हो । किन्हीं को तो कह दिया, तुम सम्पूर्ण सिर को मुड़ाया करो । किन्ही से कहा—"सिर तो मुड़ा लिया करो, किन्तु दाढी मूंछ रखा करो । शिखासूत्र मत धारण करो । किसी से कह दिया तुम वालों को कभी बाँधा मत करो, सदा खुले बाल रखा करो, आधे रखा करो । किन्ही से कहा तुम मुक्त कण्ठ होकर एक कपड़ा लपेटे रहा करो । किसी से कहा—तुम केवल एक कौपीन ही पहिना करो ।" इस प्रकार सव के पृथक् पृथक् चिह्न वना दिये । तभी से ये समाज मे वर्णाश्रम धर्मविहीन पंचम वर्ण के लोग वढ़ गये।"

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इस प्रकार महाराज वाहुक के पुत्र परम प्रतापी महाराज सगर हुए । जिन्होंने अनेकों अश्वमेध यज्ञ करके अपने वंश को संसार में स्थापित किया । इन्ही पुत्रों ने पृथिवी को खना था, जिससे समुद्र का नाम सागर पड़ गया ।"

इस पर राजा परीक्षत ने पूछा—"प्रभो ! सगर पुत्रों ने पृथिवी को क्यों खना ? और किस कारण क्षार समुद्र का नाम सागर पड़ा, कृपा करके इस कथा को मुझे सुनाइये ।"

चन्द्र की बारात में चलने की तैयारियाँ करने लगे। जाने आने वाले नये वस्त्र पेटियों से निकाले गये। वाहन सजाये गये। रथ छकड़े वहली आदि माँगी गई। प्रातःकाल वरात चलेगी इसीलिये रात्रिभर सब लोग सामान सम्हालते रहे। सड़क को बनाने वाले मिस्त्री आगे-आगे गये। आगे के पड़ाव के प्रबन्धक अति शीघ्रगामी घोड़ों पर चढ़कर गये। प्रातःकाल वरात चली। आगे-आगे हाथी जा रहे थे। उनके पीछे दौड़ने वाले ऊट थे। फिर घोड़ों की पंक्तियाँ थी। रथों की धूलि से आकाश भर गया। सामान बैलगाड़ियों और छकड़ों पर थे। कई योजनों तक लम्बी वरात मार्ग में चार दिन ठहर कर पाँचवें दिन महाराज जनक की मिथिलापुरी में पहुँची।

राजा जनक ने जब महाराज के शुभागमन का समाचार सुना तो वे स्वयं ही अगवानी करने अपने मंत्री पुरोहितों के साथ गये। बूढ़े महाराज दशरथ से जनक जी उसी प्रकार मिले जैसे कुबेर इन्द्र से मिलते हैं। वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप तथा मार्कण्डेय आदि मुनियों से घिरे महाराज ऐसे लगते थे मानों शतक्रतु इन्द्र ऋषियों से घिरकर चल रहे हों। दोनों ओर से कुशल प्रश्न होने के अनन्तर महाराज जनक सभी को जनवासा में ले आये। जनवासेमें श्रीरामलक्ष्मण को साथ लेकर विश्वामित्र जी वसिष्ठ तथा महाराज दशरथ के समीप आये। मुनि को आते देखकर शीघ्रता से महाराज उठे और दौड़कर महर्षि के पैरों में पड़ गये। बलपूर्वक राजा को हृदय से लगाकर मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर वसिष्ठ और विश्वामित्र परस्पर मिले। श्रीरामलक्ष्मण ने पहिले गुरु वसिष्ठ के चरणों में प्रणाम किया फिर पिता की चरण वन्दना की। भरत शत्रुघ्न ने श्रीराम के चरण छुए तथा सभी भाई यथोयोग्य मिले प्रेम के कारण

महाराज सगर का अश्वमेध यज्ञ

(६३६)

श्रौर्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् ।
तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरन्दरः ॥

(श्री भा० ६ स्क० ८ अ० ८ श्लो)

छप्पय

द्वै रानी तिन हतीं एकके सुत असमञ्जस।
दूसरि साठिसहस्र जने सुत मानी नीरस ॥
अश्वमेध नृप सगर धूमते यज्ञ रचायो।
भय वश सुरपति आइ यज्ञको अश्व चुरायो ॥
कपिलाश्रम महँ इन्द्रने, मख हय बाँध्यो कपट करि।
साठिसहस सुत भूमि खनि, पहुँचे नाना रूप धरि ॥

सुनते हैं, सूकरी वर्ष में तीन चार बार प्रसव करती और एक साथ उसके कई बच्चे होते हैं। वे बुरी वस्तुएं खाकर जीवन बिताते हैं। कोई उन्हें छूता नहीं सब उनसे घृणा करते

---

* श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! महाराज सगरने अपने गुरु श्रौर्व मुनि की बतायी हुई विधि से अश्वमेध यज्ञ द्वारा सर्वात्मस्वरूप ईश्वर का भजन किया। उनके छोड़े हुए अश्वमेध के घोड़े को पुरन्दर इन्द्र हर ले गये।"

उधर चारों वहिन।" फिर राजा की ओर देखकर बोले—"क्यों राजन ! आपकी क्या सम्मति।"

राजा ने विनय के साथ कहा—"महाराज मेरी सम्मति लड़कियाँ आपकी, लड़के आपके दोनों ओर से करने कराने वाले आप। हम तो बराती हैं। चार विवाह होंगे हम तो लाभ में ही रहेंगे।"

यह सुनकर सब लोग हँसने लगे। श्रीराम ने एक रहस्य भरी दृष्टि से अपने तीनों भाइयों की ओर देखा। तीनों ने लज्जित होकर मुख नीचे कर लिये। अब क्या था, चारों के विवाह के कृत्य होने लगे। महाराज दशरथ ने विवाह के पूर्व जो नान्दी मुखादि श्राद्ध कृत्य होते हैं वे सब कराये। अब तक चारों कुमार एक प्रकार से ब्रह्मचर्याश्रम में ही थे। उनके मुंडन समावर्तन आदि संस्कार कराके महाराज ने गौदान कराये। सुवर्ण के सींगों से मढ़ी चाँदी के खुरोंवाली, जिनकी पूँछों में मोती पिरोये हुए थे। ऐसी सवत्सा लाखों कपिल गौयें राजा ने दान दे दीं। बड़ी धूमधाम से गौदान करके राजा ने बहुत सा धन लुटाया। फिर द्वार पूजा आदि होकर विवाह की तैयारियाँ होने लगीं।

शुभ लग्न, शुभ मुहूर्त में और मंडप बनाकर चारों दुलहाओं के साथ चारों राजकुमारियों का शास्त्रीय विधि से बड़े समारोह के साथ विवाह संस्कार हुआ। चारों दुलहा दुलहिन वैवाहिक वेष में सजे सजाये नाना वस्तुओं से शोभायमान वेदियों के समीप बैठे थे। हवन की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। चित्र विचित्र रंगों से रंगे कलश रखे थे। धूप, दीप, नैवेद्य गन्ध, पुष्प, माला, समिधा, आज्य, तिल, जव, अक्षत, मिष्ठान शहद, गोबर, लाजा बताशे, जव के अंकुर, धान्य हरिद्रा, कुंकुम, शङ्ख, स्रुक स्रुवा आदि यज्ञपात्र तथा पत्र, पुष्प और फलों से आवृत

में प्रणाम किया और सन्तान की कामना से उनके पैर पकड़े।

महामुनि रानियों के मनोगत भावों को अपनी ज्ञान दृष्टि से समझ गये और बोले—"तुम दोनों में से जो चाहे वह एक तो वंश धर एक पुत्र माँगले और दूसरी साठ सहस्र पुत्र माँगले। बड़ी रानी केशिनी ने कहा—"प्रभो! मुझे तो एक ही वशधर पुत्र दे दें।'

दूसरी सुमतिने कहा—"महाराज! मुझे आप साठ सहस्र पुत्र दें, जिससे मैं बहुत से पुत्र की जननी कहलाऊँ।"

मुनिने कहा—'अच्छी बात है, ऐसा ही होगा।' यह कह कर मुनि राजा से पूजित और सत्कृत होकर अपने आश्रम पर चले गये। कालान्तर में बड़ी रानी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह उत्पन्न होते ही सिड़ी पागलों का सा व्यवहार करता था। बातें बोलता था, तो अंडबंड। कुछ पूछो, कुछ उत्तर दे। इसलिये सब ने उसका नाम असमञ्जस रख दिया।

दूसरी रानी सुमति के गर्भ से एक बड़ी भारी तूमी सी उत्पन्न हुई। मुनिकी आज्ञा से साठ हजार घृतके कलश मँगाये गये तब उस तूमीमे से धायने एक एक बीज निकाल निकालकर एक एक घड़ेमे रखा। कुछ काल में उन घड़ों में पुरुषों की भाँति बच्चे बन गये औन वे हृष्ट पुष्ट होकर निकले। सगर के वे साठ सहस्र पुत्र-बड़े ही बली थे। वे बड़े लम्ब तड़ंगे और वृहद् डील डौल वाले थे। वे समुद्र के ऊपर विना रोकटोक के चल सकते थे। आकाश में उड़ सकते थे। पर्वतों को चूर्णकर सकते थे। उन्होने अपने वाहुवल से सभी को भयभीत बना रखा था। समुद्र पर्वत, नदी, नद सभी उनके नाम से थरथर कांपते

गुरुजनों की प्रदक्षिणा की। मुनियों को सबने प्रणाम किया। सभी ने हार्दिक आशीर्वाद दिये सब की मंगल कामना की देवताओं ने दुंदुभि बजाई पुष्पों की वृष्टि की। इस प्रकार समस्त वैवाहिक कृत्य बड़े ही आनन्द और अत्यधिक समारोह के साथ सम्पन्न किया। विवाह करके अपनी अपनी दुलहिनों को लेकर दुलहा जनवासा में गये। परमहर्ष से बहुत-सा धन लुटाते और सुवर्ण की वर्षा करते हुए राजा भी उनके पीछे पीछे गये। जब विवाह हो गया, तब विश्वामित्रजी ने कहा—"रामचन्द्र ! तुम्हारा कल्याण हो अब हम तो जाते हैं।

आश्चर्य से चकित हुए श्रीरामचन्द्रकी का हृदय धक् धक् करने लगा। वे व्याकुल से होकर बोले—"कहाँ जायँगे भगवन् ! अब आप ?"

विश्वामित्रजी बोले—"अब मैं उत्तर पर्वत की ओर जाऊँगा।"

श्रीराम बोले—"तब, महाराज ! मैं भी चलूँगा आपके साथ।"

हँसकर कौशिक बोले—"अजी राघवेन्द्र ! अब तुम बाबाजियों के साथ कैसे जा सकते हो, अब तो आपके पैरों में बेड़ियाँ पड़ गई हैं। अब आप अकेले कहीं नहीं रह सकते। जहाँ रहोगे युगल बनकर रहोगे। द्वैत के बिना आपका अस्तित्व नहीं। मैं ठहरा वेदान्ती। अब हृदय से तुम्हें स्मरण करूँगा। मेरी इच्छा आद्याशक्ति के साथ तुम्हारे दर्शन करने की थी। आज वह इच्छा पूर्ण हुई, मैं कृतार्थ हुआ मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। अब मुझे जाने की अनुमति दो।"

श्रीराम ने आँखों में आँसू भर कर कहा—"नहीं भगवन् ! ऐसा नहीं होगा। आप चाहे मुझे छोड़ दें मैं आपको कभी छोड़ नहीं सकता। मैं किसी तरह भी आपको न जाने दूँगा।"

में फेंक देता। वे डूबने लगते, तब वह ताली बजा बजाकर हँसता रहता। इस पर प्रजा के लोग मिलकर महाराज के समीप गये और बोले—"राजन् ! या तो आप अपने पुत्र को ही रखिये या हमें ही। महाराज ! ऐसा राजकुमार तो हमने कोई देखा नहीं। यह अपनी प्रजा के बच्चों को वधिकों की भाँति जल में डुब देता है, ऐसा कुमार यदि राजा होगा, तो प्रजा की क्या रक्षा करेगा ?"

प्रजा के लोगों के ऐसे वचन सुनकर राजा को अत्यधिक दुःख हुआ। उन्हें असमञ्जस पर बड़ा क्रोध आया और उसे बुलाकर डाँटते हुए बोले—"तू बड़ा दुष्ट है रे ? मेरी प्रजा के बालकों की हत्या करता है। तू अभी मेरे राज्य से निकलजा। फिर कभी भी मुझे मुँह न दिखाना।"

कुमार असमञ्जस तो यह चाहते ही थे, अतः वे मन ही मन अत्यंत प्रसन्न होकर अयोध्यापुरी को छोड़कर चले गये। जाते समय उन्होंने अपने योग का अद्भुत चमत्कार दिखाया। जितने लड़को को उन्होंने सरयू जी के जल में फेंककर डुबा दिया था, उन सबको पुनः अपने योगबल से निकाल कर जिला दिया। जब वे सब बालक हँसते हुए अपने अपने घर पहुँचे, तब तो सभी लोग परम विस्मित हुए। वे सब मिलकर महाराज के समीप पहुँचे और बोले—"महाराज, हमसे बड़ी भूल हुई। कुमार तो कोई बड़े भारी पहुँचे हुए सिद्ध थे। देखिये, जितने हमारे लड़के डुबाये थे, वे सब तो ज्यों के त्यों जीवित होकर हमारे घरों में आगये।"

यह सुनकर राजा को भी बड़ा दुःख हुआ। किन्तु अब

श्री परशुराम दर्पदलन

(६५६)

मार्गे व्रजन् भृगुपतेर्व्यनयत् प्ररूढम् ।
दर्पं महीकृत यस्त्रिरराजबीजाम् ॥❀
(श्री भा० ९ स्क० १० अ० ७ श्लो०)

छप्पय

बिदा करन वर वधुनि सकुचि महलनि महँ आये ।
माता पुत्रिनि परम पतिव्रत धरम सिखाये ॥
जनक जननि तैं मिलीं बिलखि चारौं सुकुमारी ।
पुत्रिनि रोवत निरखि जनक सुधि देह बिसारी ॥
करि विवाह ह्वै कै विदा, वधुनि सहित नृप पुर चले ।
क्षत्रिय कुल नाशक परशु राम, कुपित मग महँ मिले ॥

संसार में कभी प्रिय घटनायें सम्मुख आती हैं कभी अप्रिय। द्वन्द से ही संसार चल रहा है, दो पंखों से पक्षी आकाश में उड़ सकता है, दो पहियों से ही रथ चलता है द्वैत में ही सृष्टि है,

---

❀ श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! विवाह करके मार्ग में जाते हुए श्रीराम ने उन परशुरामजी के प्रवृद्ध गर्व का खर्व किया, जिन्होंने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रिय शून्य किया था।"

जब राज पुत्रों को कहीं भी अश्व न मिला तो वे लौटकर अपने पिता के पास गये और हाथ जोड़ कर बोले—"पिताजी ! यज्ञीय अश्व को तो किसी ने चुरा लिया।"

महाराज सगर ने डाँट कर कहा—"तुम लोग कहाँ चले गये थे ?"

सागर पुत्रों ने कहा—"पिताजी ! हम तो सब साथ ही थे, फिर भी पता नहीं कि कैसे किसने अश्व को चुरा लिया।"

राजा बोले—"तुम लोग बड़े मूर्ख हो, मैंने तुमको अश्व की रक्षा के लिये भेजा था। तुम साठ हजार होकर भी एक अश्व की रक्षा न कर सके, जाओ स्वर्ग में, पातल में, पृथिवी में तथा अन्य भी जिस लोक में घोड़ा हो उसे ढूँढ़कर लाओगे नहीं फिर अच्छी बात नहीं होगी। अश्व बिना यज्ञ समाप्त कैसे हो सकता है ?"

पिता की ऐसी आज्ञा सुनकर वे सबके सब क्रोध करके चले, पहिले तो उन्होंने समस्त पृथिवी को खोजा। जब पृथिवी पर घोड़ा नहीं मिला, तो उन्होने पृथिवी को खोदना आरम्भ कर दिया। महाराज सगर से पहिले यह भारत वर्ष अन्य आठों वर्षों से मिला हुआ था। इलावृत वर्ष बीच में था और जैसे कमल की कर्णिका के चारो ओर पंखुड़ियाँ होती हैं, वैसे ही शेष आठों वर्ष उसके चारों ओर थे। तब जाने वाले पुरुष भारत से ही इलावृत हरिवर्ष आदि वर्षों में जा सकते थे। इन सगर के पुत्रों ने यज्ञीय अश्व के अन्वेषण के निमित्त भारतवर्ष के चारों ओर भूमि को खोद डाला जिससे इस वर्ष का इलावृत आदि सभी वर्षों के सम्बन्ध विच्छेद होगया। खोदने से इस भारतवष

बार-बार जल भर आता। जिसकी ओर भी देख लेती उसकी आँखें भर आतीं। वैदेही के नेत्रों की कोर से टप-टप मोती के समान अश्रु निकलकर नीचे गिर पड़ते। माँ पृथिवी उन्हें तुरन्त पोंछ देतीं। सोख लेतीं। जानकी को रोती देखकर सखियाँ उनका भेंट भर लेतीं और छाती से चिपटाकर कहतीं—"सीता ! बहन ऐसी अधीर क्यों होती है। तेरा सुहाग फूले फले, भगवान् ने चाहा तो फिर मिलेंगे। इतना सुनते ही सीता का हृदय फूट पड़ता। वे विलख विलख कर रोने लगतीं। उन्हें ऐसा लगता मानों मैं सदा के लिये जा रही हूँ। बड़े-बड़े नेत्र रोते-रोते सूज गये माता बार बार मना करतीं—"बेटी ! रोते नहीं श्रो" माता यह मुँह से बार बार कहती तो थीं; किन्तु स्वयं रो पड़तीं। इस प्रकार पूरा दिन पूरी रात्रि ही बीती।

दूसरे दिन विदा की तैयारियाँ होने लगीं। रथ जोड़े गये। हाथी सजाये गये घोड़े कसे गये। सवार इधर उधर घोड़ों को दौड़ाने लगे। रथ अपने-अपने स्थानों से हटाकर पंक्ति बद्ध खड़े किये गये। डेरे तम्बू उखड़ गये। सामान बँधने लगा। बिस्तरे छकड़ों पर लदने लगे सभी व्यस्त थे सभी शीघ्रता कर रहे थे। राजा की आज्ञा से चारों कुमार रथों में बैठकर महलों में विदा कराने गये। दुलहिनों को वस्त्र पहिनाये गये। पैरों में महावर लगाया गया। माता ने रूँधे हुए कंठ से पुत्रियों को पतिव्रत धर्म सिखाया। चारों कुमारों ने अपने सासों के आकर पैर छुए। उनके सिर पर हाथ फेर कर रानियों ने उन्हें अनेक-अनेक आशीर्वाद दिये। विदा के समय के सब लौकिक वैदिक कृत्य कराये। माता पिता पृथक् होने के कारण पुत्रियों का हृदय फट रहा था, वह वियोग की उष्णता से पिघल-पिघल कर नेत्रों द्वारा बह रहा था। सास ने प्रेमपूर्वक राम के सिर को सूँघकर

सगर के साठ सहस्र सुतों का विनाश

(६४०)

न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता ।
नृपेन्द्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि ।
कथं तमो रोषमयं विभाव्यते ।
जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥*

(श्री भा० ६ स्क० ८ अ० १३ श्लोक)

छप्पय

कपिलाश्रम पै अश्व निरखि नृपसुत हरषाये ।
कोलाहल अति करयो कपिल मुनि चोर बताये ॥
इन्द्र रच्यो षडयन्त्र बुद्धि नृप सुतनि बिगारी ।
मुनि मारन हित चले देहिं गिनि गिनि कें गारी॥
कोलाहल सुनि सहजही नेत्र कपिल के खुलि गये ।
दृष्टि परत निज पाप तें, सगरपुत्र सब मरि गये ॥

एक कहानी है, कोई बुद्धिमान् दुर्बल पुरुष लघुशंका कर रहे थे। उसी समय एक हृष्ट पुष्ट दुष्ट पुरुष आया। उसे एक

---

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! जो कहते हैं कि सगरपुत्र कपिल मुनि के कोप से नष्ट हो गये, यह बात उचित नहीं, क्योंकि जो जगत को पावन बनाने वाले हैं, ऐसे सत्वमूर्ति भगवान् कपिल मे, भला तमोगुण की संभावना कैसे हो सकती है ? क्या कभी पृथिवी रज का आकाश के साथ सबन्ध सम्भव है ?

महाराज जनक ने बहुत अधिक दहेज दिया। हाथी, घोड़ा, रथ, दास, दासी कम्बल, बर्तन रेशमी तथा सूती वस्त्र, कन्याओं के लिये भाँति-भाँति के बहुमूल्य वस्त्राभूषण तथा दास दासी, मणि मुक्ता दिये। लाखों गौएँ दीं। इन सब दहेज की वस्तुओं को लेकर महाराज जनक से विदा होकर महाराज दशरथ चले। मंत्रियों और ब्राह्मणों से घिर कर महाराज विदेह नगर के बाहर तक पहुँचाने गये। नगर के बाहर सबसे पुनः मिल भेंट कर तथा कन्याओं को आश्वासन देकर महाराज खिन्न चित्त से लुटे हुए व्यापारी की भाँति दान से निर्धन हुए दानी की भाँति ऋण से उऋण हुए व्यक्ति की भाँति अपनी नगरी में लौट आये कई दिन नगर में बड़ी उदासी रही।

इधर बहुओं को लिये हुए पुत्रों के साथ महाराज दशरथ बड़ी प्रसन्नता के साथ आ रहे थे कि आगे उन्हें कई प्रकार के अप-शकुन दिखाई दिये। इससे उनका मन संकित होने लगा। उसी समय बहुत से पशुपक्षी इधर उधर भागने लगे उन्होंने सम्मुख देखा मानों सुमेरु का शिखर सामने से दौड़ा चला आ रहा है। महाराज दशरथ उस इतने बड़े भयानक डील डौल वाले पुरुष को देखकर काँप उठे।

वशिष्ठजी दूर से देखकर ही समझ गये ये क्षत्रिय कुल नाशक जमदग्नि के पुत्र भगवान परशुराम हैं। उन्हें आश्चर्य हुआ, कि ये क्रोध करके हमारी ओर क्यों दौड़े आ रहे हैं। वे सोचने लगे—"अपने पिता के वध से क्षत्रियों पर कुपित इन मुनि ने घूम घूम कर सम्पूर्ण पृथिवी को २१ बार क्षत्रिय हीन बना दिया था। और सम्पूर्ण पृथिवी को अपने अधीन कर लिया था। पीछे यज्ञ करके दक्षिणा में इस सम्पूर्ण वसुन्धरा को भगवान् कश्यप को दे दिया था और स्वयं क्रोध रहित होकर

पड़ते ही सगर के साठ सहस्त्र पुत्र सब के सब जल कर भस्म
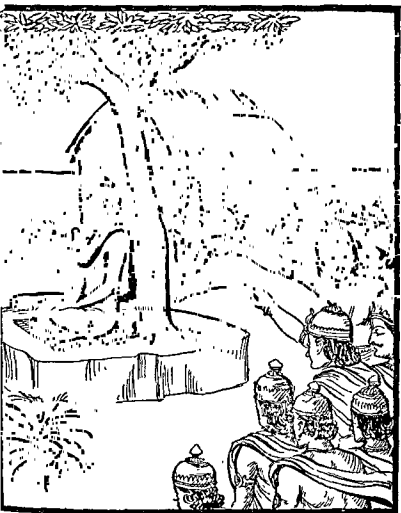
हो गये।"

विश्व विजयी वीर की पदवी भी प्राप्त की है, यह समाचार भी मुझे मिल चुका है। विश्व को जीतने वाला तो मैं ही अकेला हूँ। मैंने २१ बार पृथिवी को क्षत्रिय हीन कर दिया है। फिर भी लुके छिपे क्षत्रिय रह ही गये। उन्हीं से पुनः क्षत्रिय वंश चला है। मैंने अस्त्र-शस्त्रों का परित्याग कर दिया है। मैं सोच रहा था। इन निर्वीर्य क्षत्रियों पर क्या शस्त्र चलाऊँ कोई मेरी बराबरी का हो, उससे युद्ध करूँ। तुमने भगवान् चन्द्र मौलिके दिव्य धनुष को तोड़ दिया है, अतः तुम्हारे पराक्रम से मुझे पुनः ईर्ष्या उत्पन्न हो गई है। मैं तुमसे युद्ध करने आया हूँ।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! परशुरामजी एक ही स्वर में इतनी सब बातें कह गये, किन्तु श्रीरामजी ने पिता के गौरव से परशुरामजी की एक भी बात का उत्तर नहीं दिया। वे चुपचाप खड़े-खड़े परशुरामजी की बातें सुनते रहे। तब अत्यन्त ही दीनता के स्वर में महाराज दशरथ ने थर-थर काँपते हुए हाथ जोड़कर कहा—"ब्रह्मन्! आपने तो देवताओं के सम्मुख अस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की थी। फिर आप मेरा सर्वनाश क्यों करना चाहते हैं। भगवन्! राम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। युद्ध में यदि आप राम को मार डालेंगे, तो हममें से कोई भी जीवित न बचेगा। हे मुनीश्वर! आप मुझ दीन पर प्रसन्न हों, मेरे पुत्रों को अभय दान दें।"

राजा के वचनों को बिना ही सुने परशुरामजी ने श्रीराम को लक्ष्य करके कहा—"राम! तुम बोलते क्यों नहीं?"

श्रीराम ने सरलता से कहा—"क्या बोलूँ भगवन्!"

कुपित हुए परशुराम ने कहा—'यही बताओ तुमने शिव धनुष तोड़ा है?"

जब बहुत दिनों तक प्रतिक्षा करते रहने पर भी वे साठ सहस्र पुत्र अश्व को लेकर नहीं आये, तब महाराज को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने पौत्र अंशुमान् से कहा—"वत्स ! तुम्हारे सब के सब चचा लोग अश्वमेघ के घोड़े को खोजने गये हैं, किन्तु अभी तक लौटकर नही आये क्या बात है। वैसे तो सब के सब शूरवीर बली योद्धा और सर्वजित् थे। उन्हें कोई संग्राम में तो नही हरा सकता था। अन्य ही कोई अघटित घटना घट गई है। मैं स्वयं तो यज्ञ-दीक्षा में दीक्षित हूँ, अतः जा नहीं सकता। तुम जाओ और अपने चाचाओ का अन्वेषण करो।

अपने पितामह की आज्ञा मानकर अंशुमान् अश्वके अन्वेषण के निमित्त चले। पृथिवी पर सर्वत्र खोजने पर भी जब उन्हें अश्व का पता नही मिला, तो वे अपने चाचाओं के खोदे मार्ग से ही ढूंढ़ते ढूंढ़ते पाताल में पहुँचे। वहाँ उन्होंने क्या देखा, कि भगवान् कपिल समाधि में निमग्न हैं, यज्ञीय अश्व वहाँ छूटा हुआ हरी हरी घास चर रहा है, साठ सहस्र भस्म की ढेरियाँ वहाँ पड़ी हैं।

अब तो अंशुमान् सब कुछ समझ गये। उन्होंने अत्यन्त ही करुण शब्दों में भगवान् की स्तुति की और कहा"—हे सर्व भूतात्मन! हे भगवन्! आज आपका दर्शन पाकर हमारी विषयों की उत्कट अभिलाषा समस्त कर्मों का बन्धन और इन्द्रियों का आश्रय रूप हमारा सुदृढ़ मोहपाश नष्ट हो गया है। हे प्रभो ! आप मुझ पर कृपा करें और मुझे अपनी करुणामयी दृष्टि से अवलोकन करें"

श्री शुकदेव जी कहते है—राजन् ! उस बालक अंशुमान्

"प्रतीत होता है, तुम्हें अपने बल का बड़ा अभिमान है, शिव धनुष को तोड़ने से तुम्हारा दुस्साहस अत्यधिक बढ़ गया है। अच्छी बात है, मैं यह एक इससे भी बढ़कर दिव्य वैष्णव धनुष तुम्हें देता हूँ। यदि इसे भी तुमने चढ़ा लिया, तो तुम्हारे बल की परीक्षा हो जायगी। फिर मैं तुमसे युद्ध करूँगा।"

यह कहकर परशुरामजी ने उसी के समान एक दूसरा वैष्णव धनुष राम को देते हुए कहा—"पूर्वकाल में शिव और विष्णु में युद्ध हुआ था। उस समय शिव ने जिस धनुष से युद्ध किया था जनक के पूर्वज महाराज देव रात को दे दिया था और श्रीविष्णु ने महर्षि ऋचीक को दिया। उनसे मेरे पिता ने पाया और पिता ने मुझे दिया। राजा जनक के यहाँ रखे धनुष को तो तुम तोड़ आये। यदि इसकी भी तुम ज्या चढ़ाकर इसपर बाण चढ़ा दो, तो मैं तुम्हारे बल को जानूँ।"

परशुरामजी की यह बात सुनकर श्रीरामजी ने सरल स्वभाव से उस धनुष को उठा लिया और उसे नवाकर उसकी ज्याको चढ़ाकर उस पर बाण चढ़ा लिया और परशुराम से बोले—"महाभाग! मेरा बाण अमोघ है। वह चढ़कर व्यर्थ नहीं जाता। आपको तो मैं मारूँगा नहीं क्यों कि आप तो मेरे गुरु विश्वामित्रजी के भानजे हैं। यह बाण आपके क्रोध के कारण चढ़ा है। क्रोध से तपस्या से प्राप्त पुण्य लोक नष्ट होते हैं और प्रगति नष्ट होती है। कहो तो मैं इस बाण को छोड़कर आपकी गति नष्ट कर दूँ या आपके अत्यन्त कठिन परिश्रम से प्राप्त पुण्य लोकों को नष्ट कर दूँ।"

श्रीराम का ऐसा प्रबल पराक्रम देखकर परशुरामजी किंकर्तव्य विमूढ़ से बन गये। उन्हें ऐसा लगा मानों मेरा सम्पूर्ण बल, पराक्रम, तेज निकल कर श्रीराम के शरीर में प्रविष्ट हो गया है।

नम्रता के साथ हाथ जोड़कर अंसुमान् ने कहा"—वह क्या उपाय है भगवन् ?

भगवान् बोले—"यदि किसी प्रकार तुम गङ्गा जी को यहाँ ले आओ तो उनके जल के स्पर्श से तो इनका उद्धार हो सकता है। मनुष्य चाहे कितना भी पापी क्यों न हो, कहीं भी उसकी मृत्यु क्यों न हुई हो, यदि उसके शरीर भस्म या अस्थि ही लाकर गङ्गा जी में डाल दी जायँ, तो वह सर्व पापों से विमुक्त होकर स्वर्ग का अधिकारी बन जाता है। यदि तुम गङ्गा जी को यहाँ ला सको, तब तो इनका उद्धार हो सकता है, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उपाय नहीं।"

यह सुनकर कुमार अंशुमान् ने भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की और घोड़े को लेकर अपने पितामह के समीप गये। अश्व को पाकर महाराज सगर ने यज्ञ समाप्त किया, उन्हें पुत्रों के मरने पर कुछ शोक न हुआ। अन्त मे वे अपना सब राज पाट अंशुमान् को सौंप कर तपस्या करने वन को चले गये।

श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! महाराज अंशुमान् अपने चाचाओं के उद्धार के लिये गङ्गा जी को लाने के लिये प्रयत्न करने लगे।"

छप्पय

सुत नहिं आये सोचि सगर ने पौत्र पठाये।
अंशुमान् चलि दये कपिल मुनि आश्रम आये॥
कुमर विनय अति करी महामुनि अति हरषाये।
गङ्गा लाओ पितर हेतु ये वचन सुनाये॥
अश्व पाइ मख पूर्ण करि, सगर तपोवन चलि दये।
तदनन्तर मनु वंश के, अंशुमान् भूपति भये॥

पूर्णावतार हैं। अंश अंशी में मिल ही जाता है। इस विषय में एक दृष्टान्त सुनिये।

एक बहुत निर्धन था। उसे सदा इच्छा रहती थी किसी तरह मुझे धन मिले। जैसे तैसे उसे कहीं से एक रुपया मिला। उस रुपये को वह बड़े यत्न से रखता और सोचता कैसे एक के एक लाख हों। वह व्यापारियों के पास गया और उनसे धन बढ़ने के उपाय पूछे। लोगों ने बताया "रुपया रुपये को खींचता है।"

यह सुनकर वह एक रुपयों के भरे घर में गया उसमें ताला लगा था। एक खिड़की से उसने उसमें देखा लाखों रुपये भरे हैं। वह अपने रुपयेको खिड़कीके पास ले जाकर बार-बार कहनेलगा— "खींच ले रुपयों को खींच ले।" दो चार बार ऐसे कह रहा था कि झट उसके हाथ से रुपया गिर पड़ा। तब तो वह बहुत रोने लगा और कहने लगा—"लोग झूठ मूठ ही कहते थे रुपये को रुपया खींचता है। मेरे रुपये ने तो रुपयों को नहीं खींचा एक रुपया था वह भी हाथ से गया।"

यह सुनकर किसी बुद्धिमान् ने कहा—"इसमें असत्य बात क्या है। तेरा एक रुपया था। कोषागार में बहुत रुपये थे। उन बहुतों का बल अधिक था उन्होंने तेरे एक रुपये को खींच लिया।"

सूतजी कहते हैं—"सो, मुनियो। श्रीराम अंशी हैं। परशुराम अंश हैं। अंशी के सम्मुख आते ही उनका बल श्रीराम में आ गया। निर्बल निस्तेज तो बली तेजस्वी के सम्मुख नत होही जाता है। यह पृथिवी तो वीर भोग्या है वैसे श्रीराम तो परात् पर हैं, परशुरामजी भी उन्हीं के रूप हैं। यह सब उनकी

पुत्र ही कर सकते है, इसीलिये पितर सदा ऐसी मनोकामना करते रहते है, कि हमारे वंश में ऐसे लोग उत्पन्न हों, जो कभी वंश विच्छेद न होने दें। वंश परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखें। इसीलिये सभी सद्गृहस्थ सत्पुत्र की कामनाये करते हैं, और पुत्र प्राप्ति के लिये शक्ति भर प्रयत्न करते रहते हैं।

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! महाराज सगर जब राजपाट छोड़कर और अंशुमान् को समस्त पृथिवी का राज्य भार सौप कर वन को चले गये तब अंशुमान् को रात्रि दिन यही चिन्ता लगी रहती थी, कि कैसे गगाजी आवें और कैसे हमारे पितरों का उद्धार हो। वे सदा यही सोचा करते थे। उनके एक पुत्र भी हो गया,जिसका नाम दिलीप रखा गया। कुमार दिलीप बड़े ही तेजस्वी और होनहार थे, जब वे कुछ बड़े हुए, तो महाराज अंशुमान् पृथिवी का राज्य भार उन्हे सौपकर गङ्गाजी को लाने के लिये तप करने चले गये। वे हिमालय पर जाकर गंगा जी को प्रसन्न करने के निमित्त अत्यन्त घोर तप करने लगे,किन्तु गंगाजी का आना कोई सहज काम तो था, ही नही। गङ्गाजी उनकी तपस्या से प्रसन्न नही हुई। कुछ काल में वे इस लोक को त्याग कर स्वर्ग सिधार गये। गङ्गाजी को लाने और अपने पितरों के उद्धार की बात उनके मन की मन में ही रह गई।

दिलीप ने जब सुना कि मेरे पिता अकृत कार्य होकर ही स्वर्ग सिधार गये। गङ्गाजी के लाने की उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई, तो वे अत्यन्त दुखी हुए। किन्तु वे करते क्या, उनके तब तक कोई सन्तान नहीं थी। कुछ काल के पश्चात उनके पुत्र उत्पन्न हो गया,जिसका नाम भगीरथ रखा गया। कुमार भगीरथ, बड़े ही भगवद् भक्त, शान्त, अध्यवसायी और साहसी

मातृ पितृ भक्त राम

(६५७)

यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशम् ।
स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः ॥*
(श्री भा० ६ स्क० १० अ० ८ श्लो०)

छप्पय

भरत शत्रुहन गये मातुगृह कैकय पुर महँ।
राम होहिँ युवराज भई इच्छा नृप उर महँ॥
सबनि समरथन करयो तिलक की भई तयारी।
किन्तु कूबरी कुटिल बीच मह बात बिगारी॥
कान केकयी के भरे, मँगवाये द्वै बर तुरत।
बसैं चतुरदश बरस बन, राम राज्य पावहिँ भरत॥

राम चरित विश्व चरित है। वह व्यक्ति चरित नहीं समि
चरित है, वह अनित्य नहीं नित्य है। जो चरित हो र
है वह सब राम चरित है। राम की इच्छा के विना पत्ता भ

* श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जिन श्रीराम ने स्त्री
वशीभूत हुए और सत्य की पाश में बँधे हुए अपने पिता के
को अपनी भार्या सीताजी के सहित शिर से धारण किया वे
हमारा मंगल करें।"

आभा से सामने का पर्वत शुभ्र होने पर भी अत्यन्त शुभ्र हो रहा था। पान की लालिमा से रगे हुए अधरों की कांति जब हिमाच्छादित पर्वतों पर पड़ती तो ऐसा लगता था मानों आकाश का इन्द्रधनुष उतर कर हिमश्रृंगों पर घूम रहा है। उनके कंठ में मणिमुक्ताओं की मालायें शोभा दे रही थी। उनकी रेशमी नीली साड़ी आकाश की नीलम को तिरस्कृत कर रही थी। वे हरी कंचुकी से ढके उनके पीन पयोधर सन्तानों को अमृत पिलाने के निमित्त हिलते हुए व्यग्रता सी प्रकट कर रहे थे। क्षीणकटि के कारण वे मकर पर बैठी हुई सुवर्णलता के समान हिल सी रही थीं। लाल लहँगा पर जो सुवर्ण की चित्रकारी हो रही थी, उससे उनका सम्पूर्ण अंग दमक रहा था। वे अपने युगल उरुओं को मकर की पीठ से सटाये हुए थी। वे मंद मंद मुसकरा रही थी।"

महाराज भगीरथ नेत्र बन्द किये, त्रैलोक्य पावनी तरणि तारिणी जगदुद्धारिणी अघहारिणी विष्णुपादाब्ज संभूता भगवती सुरसरि का ध्यान कर रहे थे, सहसा उन्होंने अपने हृदय कमल पर खड़ी हुई माता की अद्भुतमूर्ति निहारी हृदय में जगज्जननी के दर्शन पाकर राजर्षि भगीरथ के रोम खिल गये। उन्होंने अपने परिश्रम को सफल समझा वे मन ही मन भगवती की स्तुति करने लगे। सहसा वह मनहारिणी चित्त कार्षिणी मनोहर मूर्ति हृदय प्रदेश से अन्तर्हित हो गई।

उस अलौकिक रूप राशि पूर्णा देवी के अन्तर्हित होते ही, महाराज का चित्त अत्यन्त व्याकुल हुआ, उनकी अभी दर्शनों से तृप्ति नहीं हुई थी। उसी हड़-बड़ाहट में उनके नेत्र खुल गये। अब वे सम्मुख क्या देखते हैं, त्रिभुवन तारिणी भगवती गँगा

कर कोई प्रिय वस्तु नहीं। अतः उन्होंने राम का हाथ पकड़कर सीताजी से कहा—"बहू! मुँह दिखाई में तुझे किसी ने कुछ दिया है। किसी ने कुछ मेरा तो सर्वस्व यह राम ही है। मैं इसे ही तुझे मुँह दिखाई में देती हूँ।"

यह सुनकर सभी हँसने लगे। सभी बहुओं के पास बहुत द्रव्य एकत्रित हो गया सबने अपनी सासों के पैर छुए। कौशल्या आदि रानियाँ बहुओं को प्राणों से भी अधिक प्यार करतीं। सदा उनके सुख की चिन्ता करती रहतीं। इस प्रकार बड़े ही आनन्द से सबके दिन व्यतीत होने लगे।

भरतजी के मामा युधाजित विवाह में सम्मिलित होने आये थे। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि भरत शत्रुघ्न कुछ काल के लिये अपने ननहाल में चलें पिताजी उन्हें देखना चाहते हैं।" यद्यपि भरत श्रीरामचन्द्रजी को छोड़कर जाना तो नहीं चाहते थे; किन्तु पिता की आज्ञा मानकर तथा नाना के अत्यधिक आग्रह को देखकर जाने को विवश हुए। शत्रुघ्नको साथ लेकर वे पिता माता तथा श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रणाम करके अपने मामा के साथ कैकेय देश में गये और वहाँ नाना नानी की प्रसन्नता के निमित्त सुखपूर्वक निवास करने लगे।

इधर श्रीरामचन्द्रजी माता पिता की सेवा करते हुए, उनकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते हुए आनन्द के सहित सीता के साथ विहार करने लगे। वे सीताजी के रूप गुण सौन्दर्य और अनुराग के कारण इतने अधिक आकर्षित थे, कि उन्हें नित्य ही सीताजी नूतन ही दिखाई देतीं। उनका अनुराग उनके प्रति नित्य बढ़ता ही जाता था। सीताजी ने भी अपना सर्वस्व श्रीराम के चरणों में समर्पित कर दिया था। उन्होंने अपने हृदय को

जगत में सर्वत्र व्याप्त रहने वाले, सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मरूप भवानी पति भगवान् भूतनाथ तुम्हारे वेग को धारण करेंगे।"

गंगाजी को यह सुन कर कुछ गर्वसा हुआ। वे सोचने लगीं रुद्र भला मेरे वेग को कैसे धारण कर सकते हैं। अस्तु उनसे तो मैं निबट लूँगी, वे तो मेरी बहिन के पति ही है। इस राजा पर अपने भाव को प्रकट क्यों करूँ।" यह सोच कर बोली—"अच्छी बात है, यदि भगवान् रुद्र मेरे वेग धारण कर भी सकें, तो भी मुझे एक आपत्ति और है।"

महाराज भगीरथ ने कहा—"वह और कौन सी आपत्ति है माताजी?"

माँ गगा बोली—"वह यहकि तुम मुझे पापियों के उद्धार के ही लिये ले चल रहे हो। तुम्हारे पितरों को तो मैं तार ही दूँगी। जब वे सब इतने क्रूर कर्मा घोर पापी तर जायेंगे, तो संसार के सभी पापी आ आ कर मुझमें स्नान करेंगे, अपने पापों को मुझमें छोड़ जायेंगे। वे लोग तो अपने पापों को मुझ में छोड़ कर निष्पाप हो जायेंगे, मैं उन इतने पापों को कहाँ जाकर धोऊँगी, इसका भी तुमने कोई उपाय सोचा है?" मैं तो पापों के भार से दब जाऊँगी, स्वच्छ से काली हो जाऊँगी।

शीघ्रता के साथ महाराज भगीरथ बोले—"माताजी। इसके लिये आप चिन्तित क्यों होती हैं, इसका उपाय तो बड़ा सरल है?"

गंगाजी ने उत्सुकता से कहा—"क्या उपाय है, भैया। इसका?"

सभा भर गई तब राजा ने अपने भूरे बालों को देखते हुए कहा—
"नृपतिगण ! और सामन्तो मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ श्रीराम अब वयस्क हो गये हैं, वे राज्यभार वहन करने में समर्थ हैं यदि आप सबकी सम्मति हो, तो मैं राम का राज्याभिषेक करदूँ, उन्हें युवराज बना दूँ। जब वे सब सम्हाल लेंगे तो मैं भगवान् के भजन में अपना समय बिताऊँगा।" इस विषय में आप सबकी क्या सम्मति है ?"

यह सुनते ही सर्वत्र आनन्द छा गया। सभी चाहते थे सीता के सहित श्रीराम को हम सिंहासनासीन देखें। श्रीराम के ऊपर छत्र चँवर होते हुए निहारें। सीता के साथ विशाल छत्र के नीचे बैठे युगल इष्ट की छवि निहारें। आज अपने मन की बात महीपति के मुख से निकली देखकर सब उसी प्रकार प्रमुदित हुए मानो पपीहा को स्वाति की बिन्दु मिल गई हो। सबने साधु-साधु कहकर सम्राट् की सम्मति का समर्थन किया और ऐसा करने के लिये सबने शीघ्रता की।

एक साथ सबको परम प्रमुदित देखकर राजा ने स्थूणा खनन न्याय से फिर कहना आरम्भ किया—"महानुभावो ! आप मेरे शासन में क्या त्रुटि देखते हैं ? मुझे स्मरण नहीं है, कि मैंने कभी प्रजापालन मे प्रमाद किया हो। मैं धर्मपूर्वक न्याय करता हूँ अभी तक मेरे शरीर में पूर्ण बल है। मैं शत्रुओं से पराजित नहीं हुआ हूँ, फिर आप मुझे राज सिंहासन से उतार ने में इतने प्रसन्न क्यों हो रहे हैं ? मेरे शासन में कोई त्रुटि हो तो बताइये।"

यह सुन कर सभी डर से गये, कि राजा का क्या अभिप्राय है ? इस पर एक बुद्धिमान विप्र बोले—"राजन् हम आपको उतारना नहीं चाहते। हमतो आपको पुनः एक बार नूतन वेष में राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित होते देखना चाहते हैं। ६०, ७०

सती प्रज्वलित अग्नि छुला दो, वह सब को तुरन्त जला ही न देगी, उसकी राख भी न रहेगी।"

गंगा जी ने कहा—"अच्छी बात है तुम मेरे वेग को धारण करने के निमित्त शङ्कर जी को प्रसन्न कर लो। वे स्वीकार कर लेंगे तो मैं आऊँगी।" ऐसा कह कर गङ्गा जी तुरन्त वहीं अन्तर्धान हो गई।

श्री शुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! गंगा जी के अन्तर्धान हो जाने पर महाराज ने भूमि में मस्तक टेक कर उस दिशा को नमस्कार किया, जिधर जगज्जननी अन्तर्हित हुई थीं। तदनन्तर वे श्री शङ्कर जी को प्रसन्न करनेके निमित्त घोर तप करने लगे।"

छप्पय

करत करत तप भूप दिलीपहु स्वर्ग सिधारे।
तिनके सुत नृप भये भगीरथ सबके प्यारे॥
पिता पितामह मरे नहीं श्रीगंगा आई।
पितर मरे यम सदन दुःख तैं ते बतलाई॥
भूप भगीरथ राज जतीं गङ्गाजी लैवे गये।
अबके जननी तुष्ट ह्वै, नरपति कूँ दरशन दये॥

यह बात राजा को भी अच्छी लगी। उन्होंने सोचा—"अच्छी बात है यह कृत्य शुभ मुहूर्त में हो जाय तभी उत्तम है। नहीं तो श्रेय कार्यों में बड़े-बड़े विघ्न होते हैं। जब कैकेयी के साथ मेरा विवाह हुआ था, तब उसके पिता ने मुझसे प्रतिज्ञा करा ली थी कि मेरी कन्या से जो पुत्र होगा वही सिंहासन का अधिकारी होगा। मैंने इसे स्वीकार भी कर लिया था। बात तो अब पुरानी हो गई। राम के गुणों के कारण सभी इसके औचित्य को भूल गये। भरत राम में अधिक श्रद्धा रखता है। वह बड़े भाई के रहते कभी सिंहासन पर न बैठेगा। प्रजा भी राम को ही चाहती है। राम जब सिंहासन पर बैठ जायँगे, तब किसी का कुछ कहने का साहस भी न होगा। अच्छी बात है यह कार्य अविलम्ब हो जाय।"

यह सोचकर राजा ने अनुमति देदी। राज्य भर में बधाइयाँ बजने लगीं सभी अपने घर का शाही उत्सव समझकर तैयारियाँ करने लगे। सर्वत्र आनन्द का सागर उमड़ने लगा। राम-राज्याभिषेक के महोत्सव में मूर्तिमान आह्लाद आकार सब कृत्य सबसे कराने लगा। बूढ़े, बालक, वयस्क, नर-नारी तथा सभी वर्ण और आश्रम के लोग परम प्रमुदित थे। वशिष्ठ जी ने श्रीरामचन्द्रजी तथा सीताजी से व्रत कराया। उन्हें नियम से रहने का आदेश दिया। श्रीराम ने दीक्षा ग्रहण की। जानकी अत्यन्त ही प्रसन्न थीं। वे बार-बार कहतीं—"प्राणनाथ! कल तो आप राजा हो जायँगे। सहस्र तानों वाले श्वेत छत्र के नीचे आप बैठा करेंगे दोनों ओर से चँवर चला करेंगे।"

श्रीराम कहते—"प्रिये! कल तो होने दो। देखो कल क्या होता है। कल के विषय में कौन कह सकता है क्या होगा।"

जानकी अपनी बात पर बल देती हुई कहतीं—"महाराज

पड़ी।" इसका सारांश यह है, कि सब कार्य समय आने पर ही होते हैं। सबका काल निश्चित है। काल भगवान् का एक रूप है। प्रयत्न कोई भी कभी भी किसी का भी व्यर्थ नहीं जाता, किन्तु उसका परिणाम अवसर पर ही प्रगट होता है। आप चाहें अमावस्या के दिन पूर्ण चन्द्र उदित हो जाय तो नहीं हो सकता। किन्तु अमावस्या के अन्धकार में पूर्णिमा का प्रकाश निहित है, अमावस्या है, तो एक दिन पूर्णिमा भी आवेगी। आप चाहें कि नित्य पानी देते रहें और आम में शीघ्र फल आ जायँ, तो यह असम्भव है। कितना भी पानी दें फल समय से ही आवेंगे। पानी देना व्यर्थ नही, पानी का फल होगा, सुन्दर फल लगेंगे, अच्छे लगेगे। किन्तु लगेंगे, समय से ही। एक बड़ा भारी पत्थर है, कुछ आदमी उसे तोड़ना चाहते हैं बार-बार घन मारते हैं, वह टूटता नहीं। दिन भर उन्होने परिश्रम किया, पत्थर नही टूटा। दूसरे दिन दूसरे तोड़ने वाले आये ज्योंहीं उन्होंने एक घन मारा फट से पाषाण फट गया, टूट गया। तो क्या कल जिन्होंने दिन भर श्रम किया था, वह व्यर्थ हो गया ? नहीं, सो बात नहीं है। उनका श्रम व्यर्थ नही गया। उनकी चोटों ने उसे जर्जरित बना दिया वह निर्बल निःसत्व हो गया, किन्तु उस दिन उसके टूटने का काल नही था, उन्हें तोड़ने का श्रेय प्राप्त होना नहीं था। वह तो दूसरे के ही भाग्य में था। इसीलिए दूसरे दिन वह टूट गया। एक आदमी सतत प्रयत्न करते हैं, उनको कोई जानता नही उनका नाम नहीं होता। दूसरा उसमें हाथ लगाता है, सर्वत्र उसका नाम होता है। कोयलों की खान के नीचे एक नीलम नाम का बहुमूल्य पाषाण निकलता है, जिस कोयलो की खान वालों को वह मिल जाता है, वे मालामाल हो जाते हैं। विशेपज्ञों ने भूगर्भ विद्या के अनुसार

दिये। रामचन्द्र के ऊपर विपुल धन न्यौछावर करके भृत्य और सेवकों को दिया।

उसी समय कैकेयीकी दासी मंथरा महलकी छत पर किसी कार्य से चढ़ी। उसने सम्पूर्ण नगरी को एक दिनमें ही नववधू की भाँति सजी बजी देखकर बड़ा विस्मय प्रकट किया। उसने देखा श्रीराम की माता याचकों और ब्राह्मणों को निरन्तर द्रव्य बाँट रही हैं। उसे बड़ा कुतूहल हुआ। उसी समय श्रीराम की धात्री उसे दिखाई दी।

कुबड़ी मंथरा ने पूछा—"दाई माँ! आज भला कौन सा पर्व है। यह नगरी इतनी क्यों सजाई गई है। श्रीरामचन्द्र की माँ आज इतना धन क्यों बाँट रही हैं? पुरी में इतनी भीड़भाड़ चहल पहल क्यों है?"

बूढ़ी दाई ने मन्थरा को घुड़ककर कहा—"हट जल मुहीं। तुझे इतना भी पता नहीं। तू निरी बुड़बकही रही। अरे, कुबड़ी कल श्रीराम राजा होंगे। ये सब रामराज्याभिषेक की तैयारियाँ हैं। उसी का यह महोत्सव है। तुझे अभी तक पता नहीं।"

मुँह फुलाकर कुबड़ी ने कहा—"हमें पता कौन दे। राजा तो स्वामिनी के अनुकूल हैं। हमें तो जब तुमही बताओ तब पता लग सकता है।" यह कहकर वह जल भुनकर भस्म सी हो गई और मुँह लटकाये हुए नीचे गयी।

उतरते ही उसने एक व्यंगभरी वाणी में कैकेयी से कहा—"महारानीजी! आपने कुछ और भी सुना है?"

कैकेयी ने उत्सुकता पूर्वक पूछा—"क्या बात है?"

अवहेलना के स्वर में कुबड़ी बोली—"सुना है, कल राम का राज्याभिषेक होने वाला है?"

अवनि पर अवतरित होने का वचन दिया है, कृपा करके आप उनके प्रबल वेग को धारण करें, यही मेरी आपके पुनीत पादपद्मों में विनीत प्रार्थना है।"

शिवजी ने कहा—"अच्छी बात है, गङ्गाजी से कह दो,वे चाहे जितने वेग से आवे मैं उन्हें अपनी जटाओं में धारण करूँगा।" मैं कैलाश के शिखर पर आसन लगाकर बैठता हूँ, गङ्गा आवें। यह सुनकर महाराज के हर्षका ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने भगवती सुरसरि की प्रार्थना की।

माता तो चञ्चला चपला बालिका ही ठहरी उन्हें एक विनोद सूझा। वे सोचने लगी—"ये शङ्कर भोलेनाथ आक धतूरा खाकर सदा कैलाश की बरफ में ही लेट लगाते रहते हैं। जबसे इन्होंने विषपान किया है, तबसे इन्हें शीत स्थान, जल स्नान अत्यधिक प्रिय हो गया है। क्यों नहीं मैं अपने प्रबल वेग के सहित इन्हें और इनके प्रिय कैलाश पर्वत को साथ लिए हुए पाताल में घुस जाऊँ।"गङ्गाजीका शिवजी से ऐसा ही सम्बन्ध है जिसमें हँसी विनोद का पूर्ण अवसर है, वहिन के पति ही ठहरे। यह सोचकर भगवती अपने अत्यन्त प्रभावशाली तेज से हर-हर करती हुई स्वर्ग से अवतरित हुई। उस समय देवता, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर उस दृश्य को देखने के लिए अपने विमानों में बैठकर कैलाश के ऊपर उड़ रहे थे। कल कल निनादिनी पतित पावनी, भवभय हारिणी भगवती अपने अञ्चल को वायु में उड़ाती, अनन्त जल राशि के रूप में शिवजी की जटाओं के ऊपर आकर गिरी। शिवजी को ऐसा लगा मानों कोई नन्हें-नन्हें जल कणों से उनका अभिसिंचन करने लगा है। आज उन्होंने भङ्ग कुछ अधिक चढ़ाली थी। गणों ने भङ्ग में धतूरे और तांबे की मात्रा अधिक कर दी थी। जब शीतल

ओर से उदासीन बने रहते हैं। भीतर ही भीतर साँठ गाँठ है। तू तो मानिनी है। साज शृङ्गार के अतिरिक्त तुझे कुछ सूझता ही नहीं। तू राजाओं की कुटिल नीति को क्या जाने। तुझे तो भड़कीले वस्त्र मिल गये। चमकीले आभूषण मिल गये। फूलकर कुप्पा हो गई। तुझे पता नहीं तेरे साथ कैसा षड्यन्त्र रचा जा रहा है।"

कैकेयी भी यह सुनकर सर्पिणी की भाँति और भी कुपित हुई और गरजकर बोली—"मन्थरा तू मेरी अब आवश्यकता से अधिक मुँह लग गई है। तू मेरी माँ की पुरानी दासी है, इससे मैं तेरा आदर करती हूँ। अब तू मेरे पति पर भी सन्देह करने लगी। बस, बहुत हुआ। अब कुछ बोली तो तेरी जीभ निकलवा लूँगी।"

मन्थरा रुकी नहीं कहती ही गई—"मेरी जीभ निकलवा लो चाहे आँखें निकलवा लो। सत्य बात तो मैं कहूँगी ही। राज्य के अधिकारी भरत हैं। महाराज ने विवाह के समय तुम्हारे पिता से प्रतिज्ञा की थी। सभी जानते हैं। अब कौशल्या के प्रेम से वे अपनी प्रतिज्ञा को झूठ करना चाहते हैं। तिस पर भी तू मेरी जीभ निकलवाने की धमकी देती है। तेरे साथ पग पग पर अन्याय हो रहा है। विवाह करके राम लक्ष्मण आनन्द विहार कर रहे हैं। सुख भोग रहे हैं। भरत को उसकी ननिहाल भेज दिया। उसकी नई बहू रो रही है। अभी ननिहाल भेजने की क्या आवश्यकता थी। इसीलिये उसे हटा दिया कि वह राज्य के अधिकार से वञ्चित रहे। घर में छोटा मोटा त्योहार पर्व होता है, विदेशों से अपने कुटुम्ब-परिवार के लोगों को बुलाते हैं। इतना बड़ा राज्याभिषेक का महोत्सव हो रहा है, भरत को शत्रु की भाँति विदेश भेज दिया। तिस पर

अपना वेग दिखाया, सम्पूर्ण बल पराक्रम लगाया, किन्तु उन्होंने जटाजूट धारी की जटाओं का पार नहीं पाया। वे उन्हीं में उलझ गईं, भटक गईं, मार्ग भूल गईं। अब तो वे बन्धन में पड़ गईं। शिवजी नेत्र बन्द किये ध्यान मग्न थे, गङ्गाजल का एक बिन्दु भी गिरि के ऊपर न गिरा। पत्नी की भगिनीके साथ भूतनाथ ने विचित्र विनोद कर दिया।

महाराज भगीरथ घबराये। इन दोनोंका तो विनोद हुआ मेरा मरण हो गया। जैसे तैसे तो गङ्गाजी को प्रसन्न किया, आकर भी शिवजटाओं में विलीन हो गईं। फिर उन्होने शिवजी की स्तुति आरम्भ की। शिवजी ने नेत्र खोले और बोले—"राजन् मैंने गङ्गाजी को धारण कर तो लिया अब तुम मुझसे क्या चाहते हो, अब तुम मेरी विनय क्यो कर रहे हो?"

विवशताके साथ राजा बोले—"अजी,महाराज धारण करने का अर्थ यह तो है ही नहीं कि आप उन्हें अपनी जटाओं में ही छिपाये रखें। मैंने तो अपने पितरों के उद्धार के लिए प्रार्थना की थी। जब आपको जटाओं में ही रखनी थी, तो मेरे जाने जैसी-ही ब्रह्मकमण्डलु में वैसी ही आपकी जटाओं में कृपा करके इन्हें अवनि पर आने दीजिए। समुद्र तक जाने दीजिये। मेरे पितरों की भस्म को बहाने दीजिये। तब मेरा श्रम सार्थक होगा।"

शिवजी बोले—" अजी राजन्! मुझे तो कुछ निद्रा सी आगई थी। अच्छी बात है लो मैं तुमको गङ्गाजी देता हूँ। देखो, विष की उष्णता से मुझे गरमी कुछ अधिक कष्ट कर प्रतीत होती है, अतः सम्पूर्ण गङ्गा को तो मैं छोड़ूँगा नहीं। तुम्हारे काम भर के लिये एक धारा दिये देता हूँ।" यह कहकर शिवजी ने अपनी एक जटा से उनका प्रवाह पर्वत पर गिराया।

गई और कैकयी के मुख की ओर देखने लगी। उसने अनुभव किया, मेरा लक्ष्य उपयुक्त स्थान पर लगा है। कैकेयी के मन में संदेह हो गया।"

कैकेयी के स्वर में अब मृदुता थी। वह खिसककर मन्थरा के पास आ गई और बोली—"हाय! मन्थरा तू बड़ी दूर की सोचती है। मुझे तो अब भी तेरी बातों पर विश्वास नहीं होता।"

मन्थरा ने प्रेमपूर्वक डाँटते हुए कहा—"तुझे काहे को होगा, विश्वास तो कौशल्या को होगा। ऊपर चढ़ कर देख तो सही कौशल्या कितनी उदारता से धन लुटा रही है। उसे वर्षों पहिले से इन सब बातों का पता था। उसने सब वस्तुएँ दान पुण्य के लिये आज के दिन को जोड़ जोड़कर रखी थीं। कब से सामग्री सजा रही थी और तुझे आज भी पता नहीं। कल राज्याभिषेक होगा। कौशल्या ने तुझे बुलाया तक नहीं। राजा ने तुझे सूचना तक नहीं दी। मैंने तुझे गोद में खिलाया। जन्म से लेकर अब तक तेरे साथ हूँ। सगी पुत्री की भाँति तुझे प्यार करती हूँ। मेरी बात पर विश्वास नहीं। सौतों की बात पर विश्वास है। शास्त्रों में सत्य कहा है, जिसके बुरे दिन आने को होते हैं, उसकी बुद्धि विपरीत हो जाती है। अच्छी बात बुरी लगती है। हित की बातें अहितकर जान पड़ती हैं।

अब तो कैकेयी को निश्चय हो गया। हाँ, यह अवश्य मेरे साथ विश्वासघात किया गया है। वह मंथरा के साथ ऊपर चढ़ी। उसने देखा सहस्रों वेदपाठी ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, याचक कौशल्या के महलों के सामने बैठे हैं। माँ उन्हें दान दे रही हैं। सब एक स्वर से आशीर्वाद दे रहे हैं। कैकेयी का हृदय सौत के ऐसे अभ्युदय से जलभुनकर भस्म हो गया। उसने वहीं खड़े

कार सुर वधूटियों की कङ्कण किंकिणि और नूपुर चूड़ियो के झंकार,गायन की सुरीली सरल ताल,वाद्योंकी सङ्गीतमय ध्वनि गङ्गाजी का कलरव शब्द,पाषाणों की चपेटों की चट्ट पट्ट आकाश में उड़ते हुए पक्षियों का कलरव तथा भगीरथ के रथका गंभीर जल भरे मेघों के समान गंभीर घरघराहट ये शब्द एक ही लय में साथ ही हो रहे थे। जैसे मृदङ्ग, वीणा, पणव, मञ्जीरा आदि विविध वाद्य विविध भाँति के शब्द करने पर भी एक ताल में एक स्वर में बजते हैं। इस विश्वमय अलौकिक सङ्गीत की सुरीली सुखमयी ध्वनि से सम्पूर्ण विश्व ब्रह्मांड भर गया। चराचर प्राणी गङ्गा के अवतरण से प्रमुदित हुए।

महाराज भगीरथ का रथ ऐसा दिव्य अलौकिक था कि वह जल में थल में समर्मे विषम में नभ में तथा गिरिशिखरों पर समान रूप से चल सकता था,उसके पीछे हर-हर मन्त्र का अविच्छिन्न अखण्ड कीर्तन करती हुई, भगवती भागीरथी चल रही थीं। जैसा कि चञ्चला बालिकाओं का सहज स्वर होता है उसी स्वभावानुसार वे टेढ़ी मेढ़ी चल रही थीं। कभी किसी गिरि शिखर से टकरा जाती, तो तुरन्त वहाँ से लौटकर टेढी चलने लगतीं, कभी किसी ऊँची चट्टान सें एक साथ ही कूद पड़ती, कभी मुड़ जाती, कभी बढ़ जाती, कही सिकुड़ जाती, कही फैल जातीं, कहीं दो पहाड़ों के बीच में पिच जाती और फिर शनैः शनैः करवट के बल चलकर उसे पार करती। कहीं शीघ्रता से दौड़ने लगती, कही थक कर गम्भीर हो जातीं। कहीं उछल जातीं,कहीं पाषाण खण्डों से क्रीड़ा ही करने लगतीं। कही किसी पहाड़ के नीचे ही नीचे बहने लगतीं, कही ऊपर बरफ है नीचे से सर्र से निकल जाती, कहीं गोल गोल रंग विरंगे पाषाण खण्डों के साथ खिलवाड़ ही करने लगतीं। उन्हें एक दूसरे से

मन्थरा ने दृढ़तापूर्वक कहा—"सुनेगा क्या चिल्लाने से युक्ति से सब काम होता है। बुद्धिपूर्वक किये हुए सब काम सफल होते हैं।"

कैकेयी ने दीनता के स्वर में कहा—"मन्थरे! तू ही अब मुझे युक्ति बता। तू ही विपत्ति सागर में डूबती हुई मुझे बचा अब मुझे क्या करना चाहिये।"

मन्थरा सम्हल कर बोली—"उसका मुख प्रसन्नता से चमक रहा था। कैकेयी को अपने अधीन समझकर उसे अपनी सफलता पर गर्व था। वह कहने लगी—"देखा, अब एक ही उपाय है। तुझे तो याद नहीं होगा, क्योंकि तू है बड़ी भुलक्कड़ *किन्तु मुझे तेरे हित की सब बातें याद हैं।* राजा जब देवताओं की ओर से असुरों से युद्ध करने गये थे, तब वे तुझे भी साथ ले गये थे। उस समय उनके रथ की कील निकल गई थी। तू उसे हाथ से रोके रही। राजा की विजय हुई। तब तेरे साहस से प्रसन्न होकर राजा ने तुझसे दो वर माँगने को कहा था। तैंने कह दिया था—"कभी अवसर आने पर फिर माँग लूँगी। अब उन वरों का अवसर है। एक वर में तो तू भरत को राज्य माँग ले, दूसरे में राम को १४ वर्ष के लिये वनवास। १४ वर्ष में जब तेरे पुत्र का प्रभाव स्थापित हो जायगा, फिर तेरा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। राम सदा के लिये राज्य से वञ्चित रह जायँगे कौशल्या तेरी दासी बनकर रहेगी। राजा भी तेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते। तू ही सबकी स्वामिनी बन जायगी। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं।

यह सुनकर कैकेयी अत्यन्त प्रसन्न हुई, उसके हर्ष का *ठिकाना नहीं रहा, उसने समझा मैंने खोया हुआ त्रैलोक्य का* राज्य कूबरी के कौशल से पुनः प्राप्त कर लिया। वह मन्थरा की

भागीरथी का नाम जाह्नवी पड़ा, उस कथा को मैं आपको सुनाता हूँ। आप इस परम पावन पुण्य प्रदायिनी कथा को दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

गरजत तरजत चली वेगतें गङ्गा माता।
गिरीं जहाँ गिरिजेश विराजें भवभय त्राता॥
सोचें शिवकूँ सङ्ग लिये पाताल पधारूँ।
जीजाजी की जटनि माहिँ जलधारा डारूँ॥
भोले बाबा भङ्ग की, बैठे सहज तरङ्ग महँ।
जटनि माहिँ गङ्गा गिरीं, परी भङ्ग तिन रङ्ग महँ॥

पम सौन्दर्य के कारण उन्हें अपने वश में कर रखा था। राजा अन्य किसी रानी के महलमें जाते ही नहीं थे। कैकेयी के ही यहाँ खाते थे वहीं सोते थे। कैकेयी को प्रसन्न करने के लिये वे सब कुछ कर सकते थे। उसे दुखी देखकर उनका मुख मलिन हो जाता और भाँति भाँति के उपायों से उसे प्रसन्न करते। जब तक वह हँस न जाती तब तक उनकी चिन्ता दूर न होती। बहुत रात्रि गये राजा जब कैकेयी के महलों में आये तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। आज कैकेयी ने आगे बढ़कर उनका स्वागत नहीं किया। सभी वस्तुएँ इधर-उधर अस्त व्यस्त पड़ी थीं। राजा बड़े चिन्तित हुए और उन्होंने व्यग्रता के साथ सेविकाओं से पूछा—"तुम्हारी स्वामिनी आज कहाँ हैं ?"

सेविकाओं ने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभो ! आज वे दोपहर से ही कोपभवन में भूमि पर लेट रही हैं। आज उन्होंने न अङ्गराग लगवाया न शृंङ्गार ही किया। वे वस्त्राभूषण का परित्याग करके उदास मनसे लेटी हुई हैं। यह सुनकर राजा का हृदय तो धक-धक करने लगा। उनके पैर अस्त व्यस्त पड़ रहे थे। वे शीघ्रता के साथ कोपभवन की ओर गये। यह उनके लिये अभूतपूर्व घटना थी। इसके पूर्व कैकेयी ने कभी ऐसा आचरण नहीं किया था। ये प्रेमकोप के अतिरिक्त वे ऐसे कुपित होकर कभी कोपभवन में नहीं गई थी। बूढ़े राजा डरते-डरते कोपभवनमें पहुँचे। उन्होंने हँसकर कैकेयी का हाथ पकड़ा। एक झटका मारकर कैकेयी ने अपना हाथ छुड़ा लिया। राजा भूमि पर ही बैठ गये। उन्होंने कैकेयी का सिर अपनी गोद में रखकर उसके बालों को सुलझाते हुए कहा—"प्रिये ! मुझ सेवक से ऐसा कौन सा अपराध बन गया, मैं तो सदा तुम्हारी आज्ञा की ही बाट जोहता रहता हूँ। मैं तुम्हारे मुख को म्लान नहीं देख

हैं, युद्ध हो जाता है। क्षण भर में सब भूल जाते हैं, एक हो जाते हैं। कुट्टी हुई मित्रता पुनः मिल्ली के रूप में परिणित हो जाती है। इसीलिये क्रीड़ा में सभी संभव है। जैसे प्रेम क्रीड़ा का अंग है वैसे ही क्रोध कलह, मान भी उसका अङ्ग है। मान के विना प्रेम में स्वाद नहीं। कलह के विना क्रीड़ा में नूतनता नहीं। भगवान् नाना रूप रखकर इस जगत् नाट्यस्थली में क्रीड़ा कर रहे हैं। गङ्गा भी उन्हीं का द्रव रूप है, विष्णु,शिव,विरंचि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवता, पितर सभी उनके ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। क्रीड़ा में शंका के लिये स्थान नही ऐसा क्यों हुआ ? क्रीड़ामे क्यों के लिये स्थान ही नहीं।

सूतजी कहते हैं-"मुनियो! आपने मुझसे गंगाजी के जाह्नवी नाम पड़ने का कारण पूछा था, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। भगवती भागीरथी चलते समय बड़ी इठला रही थीं, वे बड़ी उत्सुकता प्रकट कर रही थीं। अब वे निरी बालिका ही नहीं रही थीं। हिमालय की गोद से उतर कर वे सयानी हो गई थीं। छोटी से बड़ी हो गई थीं। चंचलता तो कुछ कम हो गई थी। वे ज्यों ज्यों बढती जाती थीं, त्यों त्यों गम्भीर होती जाती थी। अब उछलकर चलना उन्होंने छोड़ दिया। अब वे किलकारी भी नहीं मारती थीं, अब तो चुपचाप शांति के साथ गंभीर भाव से चल रही थी। अब वे पहाड़ों में जैसी रेख की भाँति पतली थीं, वैसी नहीं रहीं। अब उनका पाट बढ़ गया था। अब वे पाषाण खण्डों से खिलवाड़ भी नहीं करती थी। अब वे अंचल से अपने सिर को ढककर चलती थीं। वे ज्यों-ज्यों पतिगृह के समीप पहुँचतीं त्यों-त्यों शान्त और गम्भीर होती जाती थीं, यद्यपि बाल्यकाल की चंचलता उनमें नहीं रही, फिर भी यौवन का अक्षड़पन और दूसरों को बनाने खिजाने और हँसने

राज्य, पाट, धन कोप मेरा सर्वस्व तुम्हारे अधीन है। माँग मॉगती हो ?"

कैकेयी ने कहा—"ऐसे नहीं महाराज ! शपथ पूर्वक त्रिवाचा भरिये। तीन बार कहिये 'मैं जो भी माँगूँगी उसी को दूँगा।"

राजा ने दृढ़ता के साथ शपथपूर्वक कहा—"तुम जो भी संभव असंभव माँगोगी उसे दूंगा, दूँगा अवश्य दूँगा। बोलो, अब तो प्रसन्न हो। माँगो क्या माँगती हो।"

कैकेयी ने कहा—"देखिये, महाराज ! आपका जन्म मनु-वंश में हुआ। इक्ष्वाकुकुल के सभी भूपति सत्यावादी और धर्मात्मा हुए हैं, उन्होंने प्राणों का पण लगाकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है। कभी अपने वचन से डिगे नहीं। मैं जो माँगूँगी वही देना पड़ेगा।"

राजा हँसे और बोले—"और कैसे कहूँ, प्रतिज्ञा पूर्वक तो कह रहा हूँ, तुम माँगती क्यों नहीं।" अब केकेयी भी सम्हली। उठकर बैठ गई दृढ़ता के स्वर में बोली—"देखिये, महाराज ! पहिला वरदान तो मेरा यह है, कि भरत का राज्याभिषेक हो और दूसरा वर यह है कि राम तपस्वियों का सा वेष बनाकर १४ वर्षों तक वनों में निवास करें, कंद मूल फल खाकर मुनि व्रत का पालन करें। यदि आप सत्य प्रतिज्ञ हैं तो मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण कीजिये। कल राम का राज्याभिषेक रुकवाइये, कल ही राम को वन पठाइये, भरत को ननिहाल से बुलाइये उसे राज्य सिंहासन पर बिठाइये। अपना प्रणपूर्ण करके धर्म निभाइये।"

इतना सुनते ही महाराज मूर्छित हो गये। वे अचेत होकर धड़ाम से धरती पर गिर गये। उन्हें अपने शरीर की भी सुधि-बुधि नहीं रही।

बल से अग्नि तत्व को प्रदीप्त कर दिया; सब जल कारण में विलीन हो गया। आदि प्रवाह को रोक दिया। यह तो कोई बहुत दिन पहिले की सत्ययुग की बात है। अभी कलियुग में कुछ ही वर्ष पूर्व एक विचित्र घटना घटित हो गई। एक योगीने योग का विचित्र चमत्कार दिखाया।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! हमें भी तो सुनाइये क्या चमत्कार दिखाया।"

सूतजी बोले—"भगवन्! ग्वालियर नामक प्रयाग से दक्षिण में एक छोटा सा राज्य है। वहाँ महाराष्ट्र देश के राजा राज्य करते हैं। एक दिन एक योगी आये, वे अपनी मस्ती में नंगे ही राजमहल के भीतर जा रहे थे। प्रहरी ने उन्हे रोक दिया। वे रुक गये और एक वाटिका के चबूतरे पर खड़े होकर लघुशंका करने लगे। फिर क्या था उनका जो लघुशंका का प्रवाह आरम्भ हुआ, वह रुका ही नहीं। सम्पूर्ण बगीची भर गया। किलेके चारों ओर की खाई भर गई। राजमहल और नगर भी डूबने लगा रात्रि भर में प्रलय सी आ गई। लोगों ने दौड़ कर महाराज से निवेदन किया। महाराज दौड़े-दौड़े आये महात्मा के पैरों पड़े तब कहीं जाकर उनका प्रवाह रुका। उसी दिन से महाराज उन्हे बहुत मानने लगे। नित्य उनके लिए सुवर्णके थाल में भोजन जाता और वे खा कर थाल को फेंक देते। सारांश कहने का इतना ही है कि जिन्होंने इस प्रकृति के तत्व को समझ लिया है, उनके लिए जल का सोख लेना अग्नि को शीतल कर देना आदि भाँति-भाँति के व्यापार साधारण कार्य हैं। जो प्राकृतिक पदार्थों से ऊपर उठ गये है, उनके लिये गंगाजी के प्रवाहको रोक देना कौनसी बड़ी बात है।"

कैकेयी बोली—"देखिये, महाराज! मैं लगाव लपेट की बात नहीं जानती। आपको चाहे भला लगे या बुरा। सीधी और सच्ची बात यह है, कि एक म्यान में दो तलवार नहीं रहती। एक जंगल में दो सिंह नहीं रह सकते। एक राज्य में दो राजाओं का निर्वाह नहीं। राम अवस्था में बड़े हैं, न्यायानुकूल वे राज्य के अधिकारी हैं। भरत आपकी प्रतिज्ञानुसार अधिकारी हैं। दो अधिकारी एक साथ रहेंगे तो कुछ लोग इनकी ओर हो जायँगे, कुछ उनकी ओर। राज्य में विद्रोह फैल जायगा। मैं आरम्भ में ही यह सब बखेड़ा नहीं चाहती। १४ वर्ष में मेरे पुत्र का प्रभाव जम जायगा। फिर चाहें तो राम जैसे और प्रजा के लोग रहते हैं, वैसे आकर रह सकते हैं, तब मुझे आपत्ति न होगी। अब तो मेरे वरों में कोई परिवर्तन होगा नहीं, अब तो रामको वन जाना ही होगा। बहुत वाद विवाद की आवश्यकता नहीं। या तो कल राम वन जायँगे, या आप राम के राज्य के पहिले मुझे मरी पावेंगे, चिता में जलावेंगे। मैं नहीं मानूँगी, नहीं मानूँगी मुझे समझाना व्यर्थ है निरर्थक है या तो आप अपनी प्रतिज्ञा भंग करके असत्यवादी बनिये, या भरत को राज्य और राम को वनवास दीजिये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इतना कह कर वह क्रुद्ध सर्पिणी की भाँति चुप हो गई। राजा ने भाँति भाँति से उसकी अनुनय विनय की। उसके पैरों में अपना सिर रखा। रोये-गाये अपनी विवशता बताई, राम के विरह में अपनी निश्चित मृत्यु भी जताई, किन्तु वह वज्रहृदया नारी तनिक भी न विचलित हुई, टस से मस भी न हुई। कुबरी की मति उसकी नस-नस में व्याप्त हो गई थी। कोई मन्त्र तन्त्र औषधि उपचार उसे व्यर्थ बनाने में सफल न हो सका। राजा हार गये उन्होंने अपने जीवन की आशा छोड़

पकार में निरत रहती है, वही पितरो को तारने में समर्थ हो सकती है। वही सच्ची संतान है। तुम्हारे जल के स्पर्श से पापी भी तर जायँगे। ऐसी तरनतारिनी तुम मेरी तनया कहलाओगी, यह मेरे लिये सबसे बढ़कर गौरव की बात है।"

सूतजी कहते है—"मुनियो ! इस प्रकार गङ्गा महाराज जह्नु को अपना पिता मानकर उनकी परिक्रमा करके आगे बढ़ीं। महाराज जह्नु ने भी उनका सिर सूँघा और आशीर्वाद दिया—"तुम संसार में विश्ववन्दिता कहलाओगी।" इस प्रकार पिता जह्नु से आशीर्वाद पाकर भगवती जाह्नवी आगे बढ़ी।

छप्पय

उतरि हिमालय अंक अवनि पै नीचे आई।
सामग्री मुनि जह्नु यज्ञ की सबहिँ बहाई॥
लखि अविनय मुनि कर्यों कोप गंगा पी लीन्हीं।
भूप भागीरथ विनय बहुत विधि मुनि की कीन्हीं॥
छोड़ी गंगा कान तें, तनया तिनकी ह्वै गई।
तबई तें भागीरथी, ख्यात जाह्नवी जग भई॥

ने आकर द्वार पर कहा—"महाराज की जय-जयकार हो महाराज के दर्शनों को राज द्वार पर अपार भीड़ खड़ी है। राज्याभिषेक की समस्त सामग्रियों के सहित सहस्त्रों वेदपाठी विप्रों को लिये भगवान्वशिष्ठ महाराज की प्रतीक्षा कर रहे हैं। भगवान् भुवन भास्कर उदित हो गये। पुष्य नक्षत्र लग चुका है। महाराज सबको दर्शन देकर कृतार्थ करें और राज्याभिषेक के समस्त कृत्य करावें।"

अब राजा को चेत हुआ। उन्होंने सुना, बन्दीगण वंश की विरुदावली गा रहे हैं। सूत, मागध बन्दी खड़े स्तुति कर रहे थे। अत्यन्त मधुरस्वर में वीणा आदि बाजे-बज रहे हैं। राजा को ऐसा लगा मानों ये सब मेरा परिहास कर रहे हैं। उन्होंने क्षीण स्वर में कहा—"बाजे बन्द करो। सूत! मैं श्रीराम को देखना चाहता हूँ। तुम अविलम्ब राम को यहाँ ले आओ।"

सूत ने कहा—"भगवान् वशिष्ठ से क्या कह दूँ ?" डाँटकर राजा ने कहा—"कह तो दिया, तुम राम को अभी लाओ।"

सूत डर गया और अत्यन्त ही शीघ्र वहाँ से रथ में बैठा। सूत को देखकर सभी ने उनका रथ घेर लिया और वे उनसे भाँति भाँति के प्रश्न करने लगे। घोड़ों को हाँकते हुए सूतने इतना ही कहा—"मुझे जाने दो, मैं श्रीराम को लेने जाता हूँ।" सबने रास्ता दे दिया सूत ने जाकर श्रीराम का जय-जयकार किया और कहा—"काकुत्स्थ! आपको जनकर कौशल्या यथार्थ पुत्रवती हुई हैं कुमार! आपका कल्याण हो, महाराज आपको अभी देखना चाहते हैं। वे मँझली रानी के महलों में हैं।"

इतना सुनते ही संकोची राम बिना बालों को झाड़े एक वस्त्र पहिनकर सूत के समीप रथ में आ बैठे। दौड़कर लक्ष्मण छत्र चँवर लेकर भाई के पीछे बैठ गये। अन्य सेवकों को साथ आने

के दिखा दो तब मै सेवन करूँगा। तब तो सम्भव है उसका रोग कभी जाय ही नही। रोग जाने के लिये उसे चिकित्सक पर विश्वास करना पड़ेगा। वह जो औषधि दे उसे श्रद्धापूर्वक खाना होगा जैसा पथ्य सेवन को कहे उसे विश्वास पूर्वक सेवन करना होगा। पुत्र माता से आग्रह करे कि पहिले मुझे इस बात को प्रत्यक्ष करा दो कि यही मेरे पिता हैं, तो माँ कैसे प्रत्यक्ष करा सकती है। मैं ही माँ हूँ इसे भी वह तर्क से स्वय कैसे सिद्ध कर सकती है। पुत्र को माता-पिता और गुरुजनों के वचनों पर विश्वास ही करना होगा। जिसे माँ कहने को कहे वह माँ है जिनके माँ पिता कहलावे वे पिता हैं। गुरु अक्षरारंभ करता है। आरम्भ ही बताया है। यह "आ है, यह "इ" है यह 'उ" है। अब लड़का यह तर्क करे कि यही "आ" क्यों है। यह "उ" क्यों नही ? तो गुरु इसे तर्क से कैसे सिद्ध कर सकता है। उस पर एक ही उत्तर है। मैं गुरु परम्परा से यही बात सुनता आया हूँ, कि इसे "आ" कहते हैं। उन आप्त पुरुषों के वचनों पर मुझे विश्वास है तुम्हें भी मेरी बात पर विश्वास करना चाहिये। मैं जिस अक्षर का जो नाम बताऊँगा तुम्हें उसे ही विश्वासपूर्वक मान लेना चाहिये। ऐसे एक नही अनेकों उदाहरण हैं, कि हम बड़े लोगों के विश्वासनीय आप्त पुरुषों के वचनो पर ही विश्वास करके संसार यात्रा मे अग्रसर हो सकते है। यदि पग-पग पर हम तर्क का ही अवलम्ब लेते रहे, तब तो हम एक पग भी नही बढ़ सकते। जो कहते है—"जैसे अन्य जल वैसे ही गङ्गाजल, गङ्गाजल में क्या रखा है। उसके दरस परस और पान से पाप कैसे कट सकते हैं, उसमे भस्म अस्थि डालने से मृतक व्यक्ति का उद्धार कैसे हो सकता है ? "तो इस विषय में यही कहेंगे, कि हमारे

साथ बोले—"माँ ! मेरे पिता को आज क्या हो गया है ! ये किस कारण दुखी हैं।"

ऊपर से सरलता दिखाती हुई कैकेयी बोली—"राम तुम्हारे पिता के दुःख का कारण तुम्हीं हो।"

यह सुनकर राम के पैरों तले से तो मानों पृथिवी खिसक गई। उनका हृदय धक् से कर उठा। वे बोले—"माँ मुझसे ऐसा कौन सा अपराध बन गया है।"

विषघुली मिश्री सी वाणी में कैकेयी बोली—"तुमसे कोई अपराध नहीं बना है भैया। मेरे राजा पर दो वरदान रखे थे। आज मैंने वे दोनों माँगे। एक में भरत को राज्य दूसरे में तुम्हें १४ वर्ष के लिए वनवास। राजा तुम्हें वन जाने को कहना भी नहीं चाहते और अपनी प्रतिज्ञा भी नहीं तोड़ना चाहते। तुम पिता का प्रिय करना चाहते हो, तो आज ही राज्य-पाट त्याग कर वल्कल वस्त्र पहिन कर वन चले जाओ। राजा बड़े लज्जित हैं इसीलिए तुमसे बोलते नहीं।"

राजा पड़े-पड़े यह सब सुन रहे थे। उन्होंने इतना ही कहा—"धिक्कार है, धिक्कार तुझे'! इतना कहकर फिर वे करवट बदल कर मूर्छित हो गये।

राम अब सब रहस्य समझ गये। उन्हें रोष आया और दुखी होकर अपनी विमाता से बोले—"माँ! तुमने यह अच्छा काम नहीं किया। इस क्षुद्र कार्य के लिये तुमने मेरे पिता को इतना क्लेश दिया। पिता की बात तो पृथक् है, मैं केवल तुम्हारे कहने से ही धधकती हुई अग्नि में कूद सकता हूँ। भरत के लिये मैं पृथिवीके राज्यकी बात तो पृथक् रही त्रिभुवनका राज्यछोड़ सकता हूँ। वन में जाने के लिये तुम्हें पिता के द्वारा मुझसे कहलाने की क्या आवश्यकता थी, तुमही कह देती। मैं राज्यपाट-धन धान्य

चिपट जाओ। दोनों वहिन हृदय से हृदय सटाकर मिल लें। भर पेट प्रेम के अश्रु वहालें।"

गंगा ने विवशता के स्वर में कहा—"वहिन! देखो, मैं तुमसे डरती हूँ, तुम समस्त सरिताओं में सर्व श्रेष्ठ हो, तुम समुद्रगा सहित हो, तुमने पति के साथ संगम किया है, मैंने अभी अपने पति समुद्र के दर्शन तक नहीं किये। जहाँ मैं तुम से छाती से छाती सटाकर मिली, तहाँ मेरा अस्तित्व ही विलीन हो जायगा। मुझे फिर कौन पूछेगा। आगे तो तुम्हारा ही नाम होगा। इसलिये मैं तुम से डरती हूँ। मिलने में हिचकती हूँ, दूर से ही राम-राम करके मैं अपना मार्ग पकड़ती हूँ। तुम उधर जाओ मैं इधर से मुड़कर जाती हूँ।"

यह सुनकर यमुना उसी प्रकार हँस पड़ी जैसे बड़ी बहन छोटी वहिन की तोतली वाणी सुनकर हँस पड़ती है। यमुना बोली—"अरे, गंगे! तू इतनी बड़ी होगई, फिर भी तेरा भोलापन नहीं गया। भला यह कैसे हो सकता है, वहिन वहिन से मिले और दूर से ही नमस्कार करके चली जाय जब तक हृदय से हृदय नहीं सटता वह मिलन नहीं विडम्बना है। जब तक दो अंग एकीभूत नहीं होते, तब तक सरसता की धारा कैसे वह सकती है। पगली कहीं की। नाम की क्या बात है। बड़े तो हृदय से चाहा ही करते है छोटों का नाम हो। छोटे जब बड़े हो जाते हैं, तो बड़े लोग अवकाश ग्रहण करके अपने कार्य क्षेत्र से हट जाते हैं। तू सर्व समर्थ है, महान् शक्ति शालिनी है। आ मेरे हृदय से लगजा। तुझे मैं अपने में नही मिलाऊँगी, मैं ही तुझ मे मिल जाऊँगी। अब आगे मेरा नाम न होकर तेरा ही नाम रहेगा।"

के पादपद्मों में उपस्थित होऊँगा। तब तुम से वल्कल वस्त्र लेकर वन को चला जाऊँगा। तुम निश्चिंत हो जाओ।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इतना कहकर श्रीराम कुपित हुए लक्ष्मण को साथ लेकार माता कौशल्या के महलों की ओर पैदल ही चल दिये। सुमन्त वहाँ किंकर्तव्य विमूढ़ सा बना खड़ा का खड़ा ही रह गया। वह स्थिर ही न कर सका मैं क्या करूँ। सुमन्त को कुपित देखकर राम ने उन्हें बुलाया और साथ चलने को कहा—"वह भी बिना बोले राम के पीछे हो लिया।"

छप्पय

दशरथ अनुनय बिनय करी रानी न पसीजी।
बज्र हृदय बनि गई मन्थरा विषमहँ भीजी॥
प्रात सूत तैं तुरत भूप रघुवर बुलवाये।
मातु पिताकी दशा देखि रघुपति घबराये॥
जब नहिँ बोले नृपति कछु, कथा केकयी सब कही।
उठे बिलखि नृप राम कहि, परि पापिनि बैठी रही॥

गङ्गा ने आग्रह पूर्वक कहा—"देखो बहिन! प्रथम मिलने में सङ्कोच होता है, कोई हाथ पकड कर उनके द्वार तक पहुँचादे। तुम दोनों बहिन मेरे साथ चलो।"

यमुना बोली—"तू तो है पगली! देख, भोजन, भजन और सङ्गम सदा एकान्त में होता है, दूसरे के रहने में निरसता होती है। चल तुझे वास तक हम दोनों पहुँचाये देती है, फिर हम अलग जाकर सङ्गम करेंगी,तू अलग जाकर सङ्गम करना। सौत-सौत साथ साथ जा कर पति से नहीं मिलती. तू अभी इन बातों को क्या जाने।"

सरस्वती यमुना की सिख सुनकर हँस पडी और बोली—"बहिन अभी यह गङ्गा बच्ची है सीखते सीखते सीखेगी। तो भरि भरि कुन्ना पीसेगी। अभी तो इसे चक्की चलाना भी नहीं आता।

तीनों ने कहा—"अच्छा चलो,किन्तु आगे तीनों धाराओं का नाम तेरे ही नाम, गङ्गा रहेगा।"

गङ्गा की तो यह इच्छा ही थी। भगीरथ ने रथ हाँक दिया। गङ्गा वाराणसी की ओर बढ़ी। चम्पारण्य आदि देशों को पवित्र करती हुई वे समुद्र के समीप पहुँची। यमुना ने दूर से ही उँगली के सकेत से बताया—"देख वही हम सब सरिताओं के पति समुद्र का निकेतन है। वहीं तेरा उनके साथ सङ्गम होगा। अच्छा राम राम हम अब दूसरे मार्ग से जायेंगी।"

गङ्गा का हृदय प्राणनाथ के दर्शनों से बाँसों उछल रहा था, वह ऊपर के मन से बोलीं—"मुझे अकेली छोड़कर तुम दोनो कहाँ जाती हो। मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूँगी।"

मरण है, अमर कीर्ति के लिये प्रयत्न करना जीवन है। नश्वरकी अपेक्षा अविनाशी को ग्रहण करना ही अमरता है। राम के चरित में काम की गन्ध नहीं, विषयों की अभिलाषा नहीं, भोगों की आकांक्षा नहीं, स्वादकी इच्छा नहीं, दुःखकी चिन्ता नहीं, राम तो स्वच्छन्द हैं। उनके लिये घर और वन समान हैं। यही नहीं वन उन्हें घरसे भी प्रिय है। राम के लिये राजसी भोग और कंद मूल फल सभी समान हैं। यही नहीं राजसी भोगों की अपेक्षा वे वन्य कंद मूल फलों का विशेष आदर करते हैं। राम भोग के भूखे नहीं, वे भाव के भूखे हैं। राम हठ से मुँझलाते नहीं। हठी पर आज्ञा उल्लंघन का आरोप नहीं करते, किन्तु वह हठ शुष्क न हो प्रेमका हठ हो, अनुराग का आग्रह हो, अपनेपन में सना हठ हो। राम हठ के आगे नत जाते हैं, नत मस्तक हो जाते हैं। आश्रित के प्रण को पूरा करते हैं। अपनी बात भूल जाते हैं, यही उनकी भक्तवत्सलता है।

श्रीसूतजी कहते हैं—"मुनियो! अपने पिता के समीप से श्रीराम सीधे अपनी जननी कौशल्या के महलों में आये। माता आज बहुत तड़के ही उठी थीं। आज उसे शरीरकी सुधि नहीं थी। रामकी मङ्गलकामना के लिये न जाने आज उसने क्या क्या किया, कौन कौनसी वस्तुयें जुटाई थीं। कितने कितने देवताओं की मनौती मनाई थी। रामने सहज स्वभाव से जाकर माता के चरण पकड़े। माताने पुत्र को सिर झुकाकर सूँघा और अत्यन्त प्यार से राजसी आसन उन्हें बैठने को दिया। दूसरा आसन लक्ष्मण को भी दिया।

माता के आसन को सिर पर चढ़ाकर राम पृथिवी में ही माता से सटकर बैठ गये। माता के हाथ को अपने हाथ में लेकर

सगर के साठ सहस्र पुत्र भूमि खोद कर जिस मार्ग से कपिलाश्रम में गये थे, उसी मार्ग से गङ्गाजी घुस गईं। वहाँ जाकर उन्होंने भस्म हुए साठ सहस्र सगर सुतों की राख को अपने पावन पय में डुबा दिया। गङ्गाजल का स्पर्श होते ही यम यात्रा भोगते हुए सगर सुत तुरन्त ही विमानों पर चढ़-चढ़ कर सीधे स्वर्ग को चले गये। देवताओं ने सुमनों की वृष्टि की गन्धर्व गाने लगे—अप्सरायें नृत्य करने लगीं। बोल दे, गङ्गा मैया की जय, बोल दे गङ्गाजी की जय। "श्री राधे, श्री राधे।"

गङ्गाजी की कथा सुनकर शौनक जी ने कहा—"सूतजी! यह तो आपने गङ्गाजी का अत्यधिक महात्म्य कह दिया। भस्म के स्पर्श से सहस्रों वर्षों से नरक में पड़े जीव तुरन्त तर जायँ, यह तो विचित्र बात है।"

सूतजी बोले—"अजी महाराज! इसमें विचित्र बात क्या है। १०० योजन से भी जो केवल गङ्गाजी का नाम लेता है—'गङ्गा' इन दो शब्दों का उच्चारण करता है, वह भी सभी पापों से विमुक्त हो जाता है, फिर जिनके शरीर के अस्थि को भस्म का गङ्गाजल से स्पर्श हो जायँ,तो उनका कहना ही क्या? एक दिन कोई राजा त्रिवेणी जी में स्नान करने आये। उनके साथ उनकी बहुत सी रानियाँ थीं। ज्यों ही उन्होंने गंगा में स्नान किया त्यों ही सहस्रों मृग विमानों पर चढ़कर स्वर्ग जाने लगे रानियों ने पुरोहित से पूछा—"स्नान तो हमने किया है और ये मृग क्यों जा रहे है।"

पुरोहितने कहा—"आप लोगोंने जो अपने कुचोंमें कुन्कुम मिश्रित कस्तूरी लगा रखी थी, उस कस्तूरी का गंगाजल से

माता ने अधीरता प्रकट करते हुए लक्ष्मण से कहा—"तू वाद विवाद करता है, कि मुझे बात बताता है। बता तो सही बात क्या है ?"

रोप के स्वर में लक्ष्मण ने कहा—"बात है पत्थर ! माँ तुम जानती ही हो। राजा बूढ़े हो गये हैं। उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। वे कैकेयी के अधीन हैं। उसके हाथ की कठपुतली हैं। उस डाँइन ने राजा से दो वर माँगे हैं। एक में राम को १४ वर्ष का वनवास दूसरे में भरत के लिये राज्य। श्रीराम ने कैकेयी के सम्मुख सिर झुका दिया है। राम भले ही सिर झुका दें मैं कभी भी सिर न झुकाऊँगा। मैं आज अपने बाहुबल से श्रीराम को गद्दी पर बिठाऊँगा। कैकेयी को क्या अधिकार है, कि वह राम को राज्य से वञ्चित कर दे ? भरत के साथी आवेंगे उन्हें भी मैं समझ लूँगा ? राजा कुछ कहेंगे, तो उन्हें भी कैद कर लूँगा। माँ तुम राम को इसके लिये मना लो कि वे राजगद्दी पर बैठें। मैं सब कुछ कर लूँगा। शत्रुओं के दाँत खट्टे कर सकता हूँ, उन्हें परलोक पठा सकता हूँ, राम के राज्य में जो भी विघ्न डालेगा वह मेरा शत्रु है, उसे मैं यमसदन पठाऊँगा। आज राम मेरा बल देखें। संसार समझ ले कि राम के छोटे भाई का धनुष पूजा करने के ही लिये नहीं है, वह शत्रुओं का संहार करने में समर्थ है।" लक्ष्मण रोप में आकर और न जाने क्या-क्या कह गये।

तब श्री राम ने उन्हें शान्त करते हुए कहा—"लक्ष्मण ! आवेश बुरी वस्तु है। तुम अब अपने आपे में नहीं हो। तुम यह नहीं सोचते कि पितामाता का अपमान मेरा ही अपमान है। मैं किसी से डरकर वन नहीं जा रहा हूँ। मैं भाग्यवश या अकर्मण्य होकर राज्य का परित्याग नहीं कर रहा हूँ। माता पिता की

सगर पुत्रों ने जो जम्बूद्वीप के चारों ओर की पृथिवी खोद डाली थी, उसे गंगाजी ने भर दिया और समुद्र से मिला दिया। इसी लिये समुद्र को सागर कहने की प्रथा चल पड़ी। गङ्गाजीके लाने का महान् यश दिलीप पुत्र महाराज भगीरथ को प्राप्त हुआ। इसी लिये गङ्गाजी भागीरथी कहाईं। गङ्गावतरण की कथा के अनन्तर अब आप लोग और क्या कहने के लिये मुझे आज्ञा देते हैं।"

इस पर शौनक जी ने कहा—"सूतजी! आपने इक्ष्वाकुवंश का वर्णन करते २ स्वायम्भुव मनुसे लेकर महाराज भगीरथ तक के राजाओं की कथा सुनाई। अब आगे के राजाओं की कथा और सुनाइये। इक्ष्वाकुवंश में भगीरथ के अनन्तर जो प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नरपति हो गये हैं, उनमें से विशिष्ट विशिष्ट राजाओं के शिक्षाप्रद मनोहर चरित्रों को सुनने की हमारी बड़ी इच्छा है। क्योंकि इसी वंश में नराकृति भगवान् कौशलेन्द्र श्री राम ने अवतार धारण किया है। महाराज भगीरथ के पुत्र कौन हुए और आगे का वंश कहाँ तक चला। क्योकि पुण्य श्लोक भूपतियों के चरित्रश्रवण मात्र से ही परम पुण्य की प्राप्ति होती है।"

यह सुन कर सूतजी बोले—"मुनियों! मैं इक्ष्वाकु वंश के महाराज भगीरथ से आगे के राजाओं का वर्णन करता हूँ, आप उसे सावधानी के साथ श्रवण करें।

छप्पय

गंगा गंगा कहें नित्य गंगाजल पीवें।
सदा बसें तट निकट गंग जलतें ई जीवें॥
गंगा रज तन लाइ नहावें गंगा जलमहँ।
बसें गंग पय परसि अनिल बिहरै जिहि थलमहँ॥
श्रीगंगा के नाम तें कोटि जन्म पातक नसहिं।
भोगें भूपं भोग बहु, अन्त जाहि सुरपुर बसहिं॥

मेरे ऊपर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा, मेरा प्याराटुलारा बच्चा वन जायगा। हाय! राम के नौकर भी बहुमूल्य चॉवल खाते हैं, फिर राम वन में कसैले फल खाकर कैसे रहेगा। मेरा राम! मेरा बच्चा! मेरा छौना! कंटीले पेड़ों के नीचे कैसे सोवेगा। कंकरीली पथरीली भूमि पर पैदल कैसे चलेगा। राम! तुम मानोगे नहीं। बेटा! मैं तुम्हारी पितृ भक्ति जानती हूँ, तुम वन जाओगे। अवश्य जाओगे। रोकना भी चाहूँ तो न रुकोगे। इसलिये मैं तुम्हें वन जानेसे मना तो करती नहीं, किन्तु मेरे वत्स! इस बूढ़ी जननी की एक प्रार्थना है। मैंने तुमसे कभी कुछ माँगा नहीं। मैंने तुम्हें ९ महीने पेट में रखा है। मैंने तुम्हें पाला पोसा है स्वयं गीले में सोकर तुम्हें सूखे मे सुलाया है। मेरा कुछ भी उपकार तुम समझते हो तो मुझे एक भीख दे दो। मैं पल्ला पसार कर बेटा! तुमसे याचना करती हूँ; बूढ़ी को विमुख न करना, मेरे लाल! तुम जहाँ वन में जाओ अपनी माँ को भी साथ ले जाना। जैसे बछड़े के पीछे बूढ़ी गौ चलती है, ऐसे ही मैं तुम्हारे पीछे पीछे चलूँगी, मुझे महल नहीं चाहिए, सुख नहीं चाहिए राज्य नहीं चाहिये, ऐश्वर्य नहीं चाहिये। मुझे तो राम चाहिये मेरा राम जहाँ है वहीं मुझे राज्य है, वहीं सुख है, जहाँ राम नहीं वह मेरे लिये कुछ नहीं।" यह कहकर माँ फूट-फूटकर रोने लगी।

राम ने भूमि पर लेटी हुई और करुणा के साथ रोती अपनी माँ को उठाया। उनके शरीर की धूलि पोंछी और स्नेह से बोले—"माँ! यह तुम्हारे अनुरूप नहीं। राम की माँ को ऐसी अधीरता शोभा नहीं देती। भरत राजा होगा, वह तुम्हारा मेरी ही भाँति आदर करेगा। १४ वर्ष के पश्चात् आकर मैं तुम्हारी पूजा करूँगा। तुम्हारे चरणों की धूल को सिर पर

स्वजन विजन बन जाते है, ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है, शक्ति क्षीण हो जाती है, प्रतिष्ठा धूलि में मिल जाती है, सब धन देने से घट जाता है, किन्तु विद्या धन ऐसा धन है, जो देने से बढ़ता है। विद्या प्राप्त करने के तीन ही उपाय बताये हैं। प्रथम तो विद्या गुरु सुश्रुषा से प्राप्त होती है,गुरु की सेवा करके जो विद्या मिलती है वह फलवती और सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। दूसरा विद्या प्राप्त करने का उपाय यह है कि गुरु को यथेष्ट विपुल धन दे दे। इतना पर्याप्त धन दे कि जिससे उनकी समस्त आवश्यकतायें पूर्ण हो जायँ, यह शारीरिक सेवा न होकर धन द्वारा सेवा है। एक तीसरा विद्या प्राप्ति करने का यह भी उपाय है, कि तुम हमें एक विद्या दो उसके परिवर्तन मे हम तुम्हें दूसरी विद्या सिखावें। इस प्रकार आदान प्रदान से भी विद्या प्राप्त की जा सकती है। इन तीनों के अतिरिक्त विद्या प्राप्त करने का कोई साधन नही। छल से प्राप्त की हुई विद्या सफल नही होती।"

श्रीशुकदेवजी कहते हैं– "राजन्! आपने मुझसे महाराज भगीरथ के आगे के इक्ष्वाकुवंशों के राजाओं का वृत्तांत पूछा। दिलीप के पुत्र महाराज भगीरथ ने गङ्गाजी के लाने के कारण विश्व में बड़ी ख्याति प्राप्त की उन्हीं के नाम से गङ्गाजी अभी तक भगीरथी कहलाती है। उन्हीं पुण्यश्लोक राजर्षि भगीरथ के पुत्र श्रुत हुए, जो पिता के ही समान पराक्रमी थे। श्रुत के पुत्र नाभ हुए। नाभ के पुत्र सिन्धुद्वीप हुए। इन सिन्धुद्वीप के सुत अयुतायु हुए जो दीर्घ जीवी और धर्मात्मा थे। इन्हीं अयुतायु के पुत्र परम तेजस्वी विश्व विख्यात् महाराज ऋतुपर्ण हुए ये द्यूत विद्या में इतने निपुण थे कि इनसे कोई द्यूत में

तेरी रक्षा करें। राम मैं तेरे लिये व्रत करती रहूँगी। तेरी मंगल कामना के लिये उपवास करूँगी। तुझे वन में कोई कष्ट न हो! राम! तुम जा रहे हो। बेटा! इस अभागिन को भूल मत जाना। मुझ अधजली को विसार मत देना। मेरे लाल! हाय! वह कौनसा शुभ दिन होगा, तुझे मैं वन से सकुशल लौटते हुए देखूँगी। यदि तब तक मैं जीवित बनी रही तो तेरा फिर माथा सूँघूँगी। जा बेटा! धर्म की रक्षा के लिये, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये, पिता की आज्ञा के लिये, कुल की मंगल कामना के लिये तू वन को जा। वन के देवी और देवता तेरी सदा रक्षा करें।" यह कहते कहते माँ ने राम का ज्यों ही सिर सूँघने को सिर झुकाया त्यों ही वह बीच में धड़ाम से धरती पर गिर पड़ी, दौड़कर राम ने उन्हें उठाया, लक्ष्मण ने भी राम की सहायता की। उन्हें उसी प्रकार अचेतनावस्था में छोड़ कर श्रीराम उनके पैरों को छूकर सीताजी के समीप चले गये।

सीताजी ने देखा राम के सिर पर श्वेत छत्र नहीं है। उनके ऊपर चँवर नहीं डुल रहे हैं। सूत मागधबन्दी उनकी स्तुति नहीं कर रहे हैं। वे रथ पर भी नहीं आये हैं। उनके बाल अस्त व्यस्त हो रहे हैं। उनके पीछे लक्ष्मण भी उदास मन से चल रहे हैं। श्रीराम के मुखमण्डल पर उदासी छाई हुई है। यह देखकर सती साध्वी सीता सहम गईं। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर पूछा—"प्राणनाथ! मंगल के समय अमंगल क्यों? हर्ष के समय शोक का क्या काम? आनन्द के समय निरानन्द की छटा आपके मुख पर क्यों छिटक रही है। उत्सव के दिन निरुत्सव सा मुझे क्यों प्रतीत होता है? ब्राह्मण तो कह रहे थे, आज ही पुष्य नक्षत्र है, आज ही आपका राज्या-

बात यह थी कि विदर्भराज भीम के कोई सन्तान नही थी, इसलिये वे रानी के सहित बड़े दुखी रहते थे। एक दिन दमन नामक महर्षि ने आकर राजा का आतिथ्य ग्रहण किया। राजा ने अत्यन्त ही श्रद्धा भक्ति सहित मुनि की सेवा की। राजन की सेवा से सन्तुष्ट हुए मुनि बोले—"राजन् ! मैं आप का कौन सा प्रिय कार्य करूँ। किस कार्य से आपकी चिन्ता दूर हो सकती है ?"

राजा ने कहा--"ब्रह्मन् ! आप सर्वज्ञ है,सबके बाहर भीतर की बात जानते है, फिर भी आप मुझसे पूछते ही है, तो मै कहता हूँ। मेरे यहाँ कोई सन्तान नहीं है। आप कृपा करके मुझे कोई सन्तान दें।"

प्रसन्नता प्रकट करते हुए मुनि बोले–"राजन् ! तुम्हारे एक ऐसी त्रैलोक्य सुन्दरी कन्या होगी, जिसकी बराबरी मृत्यु लोक में तो क्या तीनों लोक की कोई ललना नही कर सकती। उसके अतिरिक्त तुम्हारे तीन पुत्र भी होगे।"

एक साथ चार सन्तानों का वरदान पाकर राजा परम प्रमुदित हुए और बोले—"ब्रह्मन् ! मै आपके अनुग्रह का अत्यन्त ही आभारी हूँ। इस प्रकार राजा के द्वारा सत्कृत होकर दमन मुनि चले गये। कालान्तर में राजा से सर्व लक्षण लक्षणा, संसार में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी एक कन्या उत्पन्न हुई। राजा ने दमन मुनि की स्मृति में उस कन्या का नाम दमयन्ती रखा। इसके अनंतर उनके तीन पुत्र भी हुए जिनके नाम दमदान्त और दमन, रखे।

दमयन्ती कुसुम की कलिका के समान शुक्ल पक्ष के चंद्र की

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—"प्रिये ! तुमने कभी दुख देखे नहीं हैं। तुम सदा सुख में पली हो। बड़े घर की बेटी हो, चक्रवर्ती महाराज की पतोहू हो। तुम वन के क्लेशों को न सह सकोगी। हठ मत करो तुम्हारा वन जाना किसी प्रकार भी उचित नहीं।

जानकी ने कहा—"मैं वन कहाँ जाती हूँ, मैं तो अपने प्राणनाथ के साथ जाती हूँ, छाया कभी बिम्ब से पृथक् रह सकती है ? प्राणों के बिना देह का क्या अस्तित्व ? चन्द्रमा के बिना प्रभा कैसे रह सकती है। जहाँ आप रहेंगे वहीं मेरा भी स्थान है।"

अत्यन्त स्नेह से श्रीराम ने कहा—"देखो, वन बड़ा भयंकर है, वहाँ पग-पग पर कंटक है, पृथिवी कठिन और पथरीली कँकरीली है।"

सीताजी ने कहा—"मैं आगे-आगे आपके कँटकों को बचाती चलूँगी। कंकड़ियों को फेंकती चलूँगी।"

राम बोले—"तुम तो व्यर्थ हठ करती हो, वन में बड़ी तीव्र वायु चलती है।"

सीता बोलीं—"मैं अपनी ओढ़नी से उसे रोकती चलूँगी।"

राम प्रेम के रोष में बोले—"तुम तो लड़कपन कर रही हो देखो, वहाँ बड़े-बड़े सिंह व्याघ्र हैं, उनकी दहाड़ सुनते ही हृदय फटने लगता है।"

सीता बोलीं—"तुम भी तो पुरुषसिंह हो। पुरुषसिंह के सम्मुख पशुसिंह कर ही क्या सकता है ?"

श्रीराम बोले—"प्रिये ! हठ अच्छा नहीं होगा। यह कोई खेल नहीं है। खड्ग की धार पर चलना है। मान लो तुम सब कष्ट भी मेरे साथ सह लो, किन्तु तुम जानतीं नहीं, जंगलों में बड़े-बड़े राक्षस रहते हैं। वे मनुष्यों को कच्चा खा जाते हैं स्त्रियों

को छोड़ते हुए कहा—"हे मराल! यदि तुम मेरा यह प्रिय कार्य करदो, तो मैं तुम्हारी चोंच सुवर्ण से मढ़वा दूंगा, नित्य ही तुम्हें घर बैठे दूध भात पहुंचा दिया करूँगा। तुम मुझे दमयन्ती से मिला दो।" राजा की ऐसी अधीरता देखकर हंस उड़ा और दमयन्ती की पुष्प वाटिका में जा बैठा।

जब सखी सहेलियों से घिरी दमयन्ती वायुसेवनार्थ पुष्प वाटिका में आई, तो वहाँ उसने एक विचित्र अलौकिक हंस को देखा। राजकुमारी ने स्वयं दौड़ कर पकड़ लिया। उसने देखा हंस के कण्ठ में एक पत्र बँधा है। कुमारी ने कुतूहलवश पत्र खोल दिया। जब उसने पत्र पढा तो उसमें नल का नाम था पत्र पढ़ते ही राजकुमारी मूर्छित हो गई। तब हंस ने मानवीय भाषा में कहा—"देवि! तुम चिन्ता न करो, मैं तुम्हें महाराज नल से मिलाऊँगा। जैसा अनुराग तुम्हारा उनके प्रति है, उससे भी अधिक अनुराग उनका तुम्हारे प्रति है।"

लजाते हुए दमयन्ती ने कहा—"तुम मेरा सन्देश उनसे जाकर कहो। मैं उनके बिना अन्य किसी पुरुष की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकती।"

हंस ने राजा से आकर सब समाचार कह दिया। अब राजा रात्रि दिन दमयन्ती के ही विषय में सोचते रहते थे।" कस्तूरी और प्रीति छिपाने से नहीं छिपती, सखियों द्वारा रानी को और रानी द्वारा राजा को यह समाचार मिला। महाराज भीम ने तुरन्त ही दमयन्ती के स्वयंवर की तैयारियां की देश-देश के राजा दमयन्तीके रूपकी ख्याति सुनकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छा से विदर्भ देश में आने लगे। राजा ने सभी का समुचित स्वागत सत्कार किया। महाराज नल भी दमयन्ती के प्रेम से चुम्बक

साहस है, कि वह उसकी स्त्री की ओर आँख उठाकर देख सके। रघुनन्दन! आप मुझे डराकर यहाँ रखना चाहते हैं सो आप मुझे न रख सकेंगे। १४ वर्षकी तो कौन कहे पल भर में मैं आपसे पृथक् नहीं रह सकती। प्राणनाथ मैं आपके बिना अवध में न रहूँगी। आपका आग्रह व्यर्थ है, मैं आपका साथ किसी दशा में भी नहीं छोड़ सकती।"

श्री राम समझ गये, सीताजी मानेंगी नहीं, अतः वे बोले—"अच्छी बात है, यदि तुमने ऐसा ही निश्चय कर लिया है, तो तैयार हो जाओ।"

उल्लास के साथ विदेहतनया ने कहा—"मुझे तैयारी ही—क्या करनी है। चलिये चलती हूँ, यह कह कर वे जैसे बैठी थीं वैसे ही उठ खड़ी हुईं।

अब श्री राम ने लक्ष्मणजी कहा—"लक्ष्मण! देखना, मेरी माँ को कोई कष्ट न हो सीता के महलों की भी रक्षा करना। मेरा जो भी कुछ धन है, उसे सत्पात्रों को दान दे देना।"

यह सुनते ही आँखों में आँसू भरकर अत्यन्त ही प्रेम भरे रोप के स्वर में लक्ष्मण ने कहा—"राघव! आप मुझसे ऐसी बातें न कहें? प्रभो! मैं अवध में आपके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता।"

श्रीरामने अत्यन्त ही प्यार से लक्ष्मण की ठोढ़ी को ऊपर उठा कर उनके बालों को सुलझाते हुए कहा—"भैया! लक्ष्मण! मैं जानता हूँ, तुम्हारा मेरे ऊपर कितना अनुराग है। मैं यह भी जानता हूँ, मेरे बिना तुम्हें कितना क्लेश होगा, किन्तु भैया! कर्तव्य के सम्मुख सबका बलिदान करना होता है। अधीर नहीं होते हैं भैया! अरे, हम तो समझते थे तू बड़ा कर्तव्य-परायण है। ऐसा हृदय दौर्बल्य तुम्हारे अनुरूप नहीं। देखो,

दमयन्ती ने कहा–' देवि ! मैं निर्लज्ज होकर यह कहती हूँ, कि मेरे हृदय पर तो निषाद नरेश ने अपना अधिकार जमा लिया है। हे वीर ! मैं तुम्हें छोड़ विष्णु को भी वरण नहीं कर सकती। हृदय तो एक होता है, वह तो महाराज नल के हाथो बिक गया। अब मेरे पास लोकपालों के लिए कुछ नहीं है। आप मेरा सन्देश लोकपालों से कह दें, वे भी स्वयम्वर में आवें सबके सम्मुख मैं आपको वरण करूँगी।"

अपने ऊपर दमयन्ती का ऐसा अनुपम अनुराग निहारकर राजा के रोम-रोम खिल उठे उन्होंने लोकपालों से सब वृत्तान्त जाकर कह दिया। लोकपाल भी स्वयवर सभा में पहुँचे। महाराज नल भी पहुँचे। विदर्भराज ने सबका स्वागत सत्कार किया। नियत तिथि को सभी देशों के राजा और राजकुमार सजधजकर स्वयम्वर सभा में बैठे। उसी समय नूपुरों को बजाती सबके मन को लुभाती, हृदय को हुलसाती, राजकुमारी दमयन्ती सीधी सभा में आई और आते ही महाराज नल के कंठ में जयमाला पहिनाकर नीचा सिर करके खड़ी हो गई।

सभी के मुख फक पड गये। दमयन्ती को पाकर नल परम प्रसन्न हुये। देवताओं ने भी उन्हें आशीर्वाद दिया। इन्द्र ने कहा—"तुम अपने यज्ञों में देवताओं का प्रत्यक्ष दर्शन करोगे और उत्तम गति को प्राप्त करोगे।"

अग्नि ने कहा—"तुम जहां चाहोगे, वही मै तुरन्त प्रकट हो जाऊँगा और अन्त समय में तुम्हे मेरे समान प्रकाशवान् तेजस्वी लोकों की प्राप्ति होगी।"

धर्मराज ने कहा—"तुम्हारे हाथ के बनाये सभी भोज्य

करना। उनकी आज्ञा का कभी मन से भी निरादर न करना। मैं यहाँ बैठी बैठी रोऊँगी। अपने भाग्य को कोसूँगी यह कहकर भगवती सुमित्रा रोने लगीं। लक्ष्मण ने देखा किवाड़ की आड़ में से दो भीगी हुई आँखें सतृष्ण भाव से उनकी ही ओर देख रही हैं। लक्ष्मण ने एक दृष्टि डाली वे विचलित नहीं हुए तुरन्त माता के पैर छूकर बाहर आये और देखा राम के पीछे सीता खड़ी हैं और राम सुमित्रा देवी के घर की ही ओर आ रहे हैं श्रीराम ने आकर देवी के पैर छुए और इतना ही कहा—"माँ! मैं वन जा रहा हूँ।"

रोते रोते सुमित्रा ने श्रीराम का सिर सूँघा और बिलखते हुए कहा—"बेटा अपने धर्मात्मा पिता को सत्यवादी सिद्ध करते हुए तुम वन जा रहे हो, जाओ बेटा भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें किन्तु हमारे जीवन का अवलम्ब क्या रहेगा।"

श्रीराम ने गीली आँखों को पोंछते हुए कहा—"माँ! तुम्हारा अवलम्ब पिताजी हैं। यही आर्य ललनाओं का प्राचीन सदाचार है।" सुमित्रा यह सुनकर रो पड़ीं। सीता ने अपनी सास के पैर छुए। अपनी अत्यन्त सुकुमारी बहू को राम के साथ छाया की भाँति जाते देखकर सुमित्रा का हृदय फटने लगा। वह बिलख बिलख कर रोने लगीं और बार बार विधाता को धिक्कार देने लगीं। उन्होंने सीता को कसकर हृदय से चिपटा लिया और आँसुओं से उनके बालों को भिगो दिया। बड़ी कठिनता से रोते रोते सीता ने सुमित्रा से विदा ली। उसी समय श्रीराम क्या देखते हैं कि बाल बखेरे पगली की भाँति रोती हुई कौशल्या सुमित्रा के महलों की ओर दौड़ी चली आ रही है। अपनी माँ की ऐसी दशा देखकर श्रीराम के धैर्य का भी बाँध टूट गया। उनका भी हृदय भर आया, किन्तु वे कर्तव्य पाश में बुरी तरह

इस पर कलि को क्रोध आ गया। उसने कहा—"अच्छी बात है दमयन्ती को और उसके पति नल को देख लूँगा।" यह कहकर वह सूक्ष्म रूप से राजा के शरीर में घुसने का अवसर देखने लगा। एक दिन महाराज नल शीघ्रता में लघुशंका गये, लघुशंका जाकर उन्होने आचमन तो किया, किन्तु पैर नही धोये। कलियुग तो सदा अशुद्धि में बसता है, उसे ही सुअवसर पाकर कलियुग राजा के शरीर में प्रवेश कर गया। जब कलियुग शरीर मे घुस जाता है, तो प्राणी अधर्म को ही धर्म समझने लगता है। उसे सदाचार ढोंग प्रतीत होता है, सत् असत् का विवेक नष्ट हो जाता है, वह परमार्थ पथ से भ्रष्ट हो जाता है। कलियुग के प्रवेश करते ही राजा के शरीर में हठ ने प्रवेश किया। राजा का छोटा भाई पुष्कर आया और उसने इनसे जुआ खेलने का आग्रह किया। राजा ने तुरन्त इसे स्वीकार कर लिया। जब यह बात प्रजा के लोगों को मालूम हुई, तब वे सब मिलकर राजा के पास गये और उनसे प्रार्थना की—"महाराज ! जुए का व्यसन अच्छा नहीं होता, इसके कारण बहुत से लोग निर्धन और गृह विहीन हो गये है, आप सबके स्वामी हैं, आपको इस निन्दित कर्म को कभी भी न करना चाहिए।" राजा ने प्रजा के लोगों की बातें अनसुनी कर दीं और वे पुष्कर के साथ जुआ खेलने लगे। कलियुग के भाई द्वापर ने जुए के पासों मे प्रवे। करके पुष्कर का पक्ष लिया। अब जो भी दाव पड़ता उसमें पुष्कर की जीत ;होती, नल की हार होती। महारानी दमयन्ती ने जब सुना कि मेरे पति जुए में व्यस्त है, तो उसने मन्त्री, पुरोहित, पुरजन तथा सभी सम्बन्धियों को बुलवा बुलवा कर सब राजा को भाँति-भाँति से जुए के अवगुण कहलाये,स्वयं भी उसने धात्री के द्वारा राजा को अन्तःपुर में बुलवाया किन्तु राजा ज्यों-ज्यों हारते त्यों-त्यों वे और भी जुए में लिप्त

छा गया। सभी रोने लगे चिल्लाने लगे, डकराने लगे। कैकेयी की निन्दा करने लगे। श्रीराम को देखकर सबके नेत्रों से जल बह रहा था। कैकेयी के द्वार पर खड़े होकर उन्होंने सूत से कहा—"सुमन्तजी! तुम जाकर पिताजी से कह दो जानकी और लक्ष्मण के सहित मैं बन जाने को उद्यत खड़ा हूँ। एक बार आपके अन्तिम दर्शन करके आज ही मैं बन को चला जाना चाहता हूँ।" यह सुनकर सुमन्त दौड़कर भीतर गये।

श्रीराम ने देखा—"कुल गुरु भगवान् वशिष्ठ ब्राह्मणों के सहित उदास बैठे हैं। श्रीराम ने दौड़कर उनके चरण छुए। राम को देखकर मुनि रो पड़े। और बोले—"बेटा, राम! भाग्य को कोई मेंट नहीं सकता। क्या जानकी और लक्ष्मण भी तुम्हारे साथ बन जा रहे हैं?" श्रीराम ने सिर हिलाकर हाँ का संकेत किया। मुँह से कुछ भी न कह सके।

सूत ने श्रीराम के आने का समाचार महाराज दशरथ को दिया। सुनकर राजा मूर्छित हो गये। फिर बोले—"सुमन्त! अपनी सम्पूर्ण स्त्रियों के साथ ही राम को देखना चाहता हूँ, मेरी सब पत्नियों को यहाँ बुला लाओ।"

बूढ़े सूत यह सुनकर तुरन्त लौटे। राम ने उनसे पूछा—"क्या हम चलें।" सुमन्त ने शीघ्रता से कहा—"रामभद्र! अभी आप रुकें मैं आपकी सम्पूर्ण माताओं को ले आऊँ, राजा तुम्हें सबके साथ देखना चाहते हैं।" राम को यह बात अच्छी नहीं लगी, किन्तु करते क्या? वे पिता की आज्ञा के विरुद्ध आचरण नहीं कर सकते थे। क्षण भर में सभी रानियाँ एकत्रित हो गयीं, श्रीराम गुरु को आगे करके राजा के समीप गये। राम को देखकर कैकेयी को छोड़कर सभी रानियाँ रो पड़ीं। महाराज दशरथ को पता भी नहीं था, कब गुरु आये कब अपने आसन पर आकर

भ्रष्ट राजा पर इतना अनुराग करती है। वह मुझ में अनुराग कैसे करेगी। अत: उसने घोषणा कर दी, कि जो भी पुरुष मेरे राज्य में नल के प्रति सहानुभूति दिखावेगा, उनका स्वागत सत्कार करेगा, उन्हें अपने घरों में ठहरावेगा, उसे कड़े से कड़ा दंड दिया जायगा।"

इस राजाज्ञा के उद्‌घोषित होते ही सभी डर गये। भयवश कोई भी महाराज नल के निकट नही आये। राज कर्मचारियो ने अस्त्र-शस्त्रों से जाती हुई भीड़ को तितिर-बितिर कर दिया। महाराज रानी को साथ लिये अकेले ही नगर से बाहर निकले।

राजा को पैदल चलने का अभ्यास नहीं था। रानी भी अत्यन्त सुकुमारी थीं दोनों ही नंगे पैरो जा रहे थे। प्रातःकाल ही वे नगर से बाहर हुए थे। चलते चलते उनके पैरों मे छाले पड़ गये। रानी के अरुण कमल के दलो के समान सुकुमार पैरों से रक्त बहने लगा। उनका मुख कमल राज भवन रूपी पुष्करिणी से बाहर आने से मुरझा गया था। प्यास के कारण उनके ओठ सूख गये थे। ओठों पर पपड़ी जम गई थी। धूल से उनके काली काली अलकावली तथा पलकें धूमिल हो गई थीं। वे बड़े कष्ट से पग पग पर स्खलित सी होती हुई चल रही थीं। जब उनसे न चला गया तब अपने पति के कंधे से कपोल सटाती हुई भर्राई वाणी से बोलीं—"प्राणनाथ! अब तो एक पग भी चलने की सामर्थ्य नहीं।

जिस रानी को स्वेच्छा से सूर्य भी नही देख सकते थे, जिन्होने जीवन में कभी भी खुली भूमि पर पग नही रखे थे। जिन्हें पैदल चलने का कभी अवसर ही प्राप्त नही हुआ था, उन्ही सुख में पली रानी की ऐसी दुर्दशा देखकर महाराज नल

ठहर सकता। सब रो रहे थे, वह मन ही मन हँस रही थी सब चाह रहे थे, राम जैसे हो तैसे न जायँ। वह चाह रही थी राम शीघ्र से शीघ्र नगर से निकल जायँ। सब राम को रो रहे थे, वह जाने को शीघ्रता कर रही थी। राम उसके हृ गत भावों को पढ़ते जाते थे और शीघ्रता करने का प्रयत्न करते, किन्तु सबके प्रेम पाश में ऐसे फँसे थे, कि सहसा जा नहीं सकते थे।

वशिष्ठजी, सुमन्तजी तथा अन्य ब्राह्मणों और मन्त्रियों के कहने का जब कैकेयी पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा तब विवश होकर राजा ने अत्यन्त ही ममता के साथ श्रीराम से कहा- राम! मैं समझ गया तुम रुकोगे नहीं। सीता भी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ सकती किन्तु बेटा! मेरी एक अन्तिम प्रार्थना है तुम मुझे कैद कर लो क्योंकि मैं स्त्री के वश में हो गया हूँ राज्य के अयोग्य सिद्ध हुआ हूँ, अपने कर्तव्य से च्युत हो गया हूँ। ऐसे राजा को कैद कर लेना योग्य राजकुमार के लिये न्याय धर्म संगत है। किन्तु मैं तुम्हारी पितृ भक्ति जानता हूँ। तुम मुझे कभी कैद न करोगे। मेरी उचित अनुचित सभी आज्ञाओं को मानोगे। यदि ऐसा न करो तो इतना तो अवश्य करो—तुम आज मत जाओ आज मैं स्नान करूँगा। तुम्हारे साथ बैठ कर एक थाल में भोजन करूँगा। मेरे सब मनोरथ पूर्ण हो जायँगे। आज सुखपूर्वक तुम्हारे साथ भर पेट भोजन करूँगा कल तुम आनन्द पूर्वक भले ही वन चले जाना, फिर तुम्हें न रोकूँगा।"

श्रीराम अब तक चुप थे। पिता को इतना अधीर देखकर बोले—"पिता जी! आप संसार में सर्वत्र सत्यवादी और धर्मात्मा के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप सहस्रों वर्षों तक इस भूमि पर राज्य

इतना सुनना था कि वज्र हृदया कैकेयी तुरंत तीन जोड़ी वस्त्र निकाल लाई। मानों उसकी मंत्राणी मंथरा ने सब प्रबन्ध पहिले
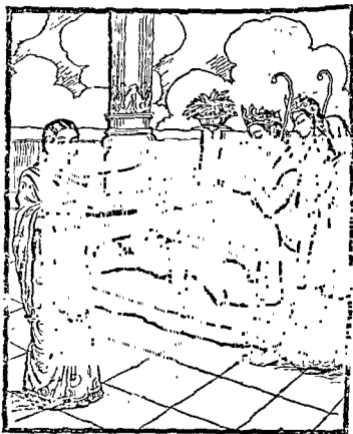
से ही कर रखे हों। कैकेयी ने शीघ्रता से दो वस्त्र श्रीराम को दो लक्ष्मण को और दो सीता जी को दिये। श्रीराम ने वहाँ सब के

राजा ने कहा—"प्रिये! जो भाग्य में बदा होगा वही होगा तुम चिन्ता न करो। यह कहकर राजा आगे चले। चलते चलते उन्हें एक पथिक निवास मिला। उसमें वे धूलि में ही पड़ गये रानी उनकी गोद में सिर रखकर सो गई, कि कहीं ये मुझे छोड़ न जायँ। रानी बहुत थक गई थी वे तो पड़ते ही सो गईं। किन्तु नल के नयनों में नींद कहाँ? वे तो रानी को दुखी देख कर परम व्याकुल हो रहे थे। शनैः शनैः उठकर उन्होंने सोती हुई रानी के मुख को निहारा। मुरझाई हुई कुसुम कलिका के समान, ग्रहण लगे चन्द्र के समान, कुहरे से ढके सूर्य के समान, विषादग्रस्त प्रोषित भर्तृका के समान, उसका सुन्दर मुख म्लान हो रहा था। उसके काले काले घुंघराले बाल केशपाश चिपटकर सिमटकर बाबाजियों की जटाओ के समान बन गये थे। रानी की ऐसी दशा देखकर राजा रोने लगे। शनैः शनैः उन्होंने उस के सिर को उठाकर भूमि पर रखा। रानी थकने के कारण इतनी अचेत हो गई थी, कि उन्हें कुछ मालूम ही न हुआ।

दमयन्ती को भूमि पर लिटाकर महाराज उस निर्जन वन की पथिकशाला में इधर-उधर घूमने लगे। कभी तो मन में आता इसे छोड़कर चला जाऊँ, कभी फिर सोचते यह इस निर्जन वन में अकेली कहाँ भटकती फिरेगी। राजा बड़ी देर तक चिन्ता ग्रस्त बने रहे, वे कुछ निर्णय न कर सके। अन्त में वे रानी को छोड़कर चल दिये। एक बार उन्होंने अपनी प्राणप्रिया के मुख कमल को समीप जाकर निहारा उनका हृदय फटने लगा। चित्त ऐठने लगा। अन्तःकरण धक धक करने लगा। वे अपनी ऐसी दशा देख तुरन्त वहाँ से चल दिये। कुछ दूर जाकर उन्हें फिर रानी की याद आई। वे लौट आये। रानी अचेत पड़ी थी। कभी तो वे सोचते—"अच्छा है मेरे बिना यह अपने पिता के

मे सीता के वन में जाने की बात तो नहीं है। फिर तू सीता को वल्कल वस्त्र क्यों पहिना रही है। पापिनी मैं तेरा मनोरथ कभी पूर्ण न होने दूँगा। मैं जानकी को वन न जाने दूँगा। रामवन से लौटने तक जानकी गद्दी पर बैठेगी। उससे मैं राज्य कराऊँगा। तू मुझे देखना कैसे रोक सकती है ?"

भगवान् वशिष्ठ की बातें सुनकर सभी को संतोष हुआ। श्रीराम घबरा रहे थे, कहीं कोई नूतन काण्ड न हो जाय। राजा ने जानकी को बुलाकर उनके वल्कल छीन लिये और कोषाध्यक्ष से कहा—"मेरी पुत्र वधू के लिये रेशमी वस्त्र और दिव्य आभूषण ले आओ।" कोषाध्यक्ष ने तुरन्त राजा की आज्ञा का पालन किया। सीताजी ने ससुर की दी हुई सम्पूर्ण सामग्री सादर स्वीकार की। श्रीराम यह सब नहीं चाहते थे, किन्तु वे कुछ बोलते नहीं थे। उन्हें तो पल पल भारी हो रहा था, वे सोच रहे थे, जैसे भी हो तैसे शीघ्र यहाँ से छुटकारा हो। अतः वे किसी भी काम में न तो हस्तक्षेप ही करते थे और न किसी के प्रश्न का उत्तर देते थे। वे सोचते थे, कैसे भी मैं नगर से बाहर हो जाऊँ, तब तो सब कुछ कर लूँगा।

राजा ने सुमन्त से कहा—"सूत! मेरा निजी रथ जोड़ लाओ। मेरे बच्चे नगर से पैदल न जायँ इन्हें रथ में बिठाकर नगर के बाहर पहुँचा आओ।" यह सुनते ही सूत राजा के रथ को तुरन्त जोड़ लाया। सेवकों ने रोते-रोते श्रीराम के धनुष बाण रखे। लोहे की पेटी, कुदाली और तरकश लक्ष्मणजी ने रथ में स्वयं चढ़ाये। जानकी को सहारा दे कर श्रीराम ने रथ पर चढ़ाया। श्रीरामजी उनके बराबर वल्कल पहिने उसी प्रकार बैठ गये जैसे साधु वेष में काम देव रति के साथ रथ में बैठा हो। लक्ष्मण हाथ जोड़े हुए उनके पीछे बैठे। सूत ने कड़ा हृदय करके

आते। ऐसे वे कई बार गये आये। अन्त में कड़ा हृदय करके वे दमयन्ती का परित्याग करके चले गये।

प्रातःकाल हुआ। दमयन्ती ने उठते ही शङ्कित भावसे इधर उधर दृष्टि डाली, किन्तु उसे अपने पति दिखाई न दिये। अब तो वह सब रहस्य समझ गई। कुररी पक्षी की भाँति वह रो रो कर बड़े आर्त स्वरमें अपने पति को पुकारने लगी—"हा!प्राण नाथ! मुझ दुखियाको आप इस घोर वनमें छोड़कर एकाकी कहाँ चले गये।" इस प्रकार दमयन्ती रोती जाती थी, विलाप करती थी और भागती जाती थी। पता नही आज उसमें इतनी शक्ति कहाँ से आ गई। आगे चलकर उसे एक भयङ्कर अजगर मिला उसने दमयन्ती को पकड़ लिया और उसे निगलने का उपक्रम करने लगा। इससे वह बहुत डरी और अपने पति को पुकारने लगी दैवयोग से उसी समय एक बहेलिया वहाँ आ गया। दमयन्ती का करुण क्रन्दन सुनकर वह उसी ओर दौड़ा उसने एक शस्त्र से अजगर का मुख फाड़ दिया। दमयन्ती सकुशल अजगर के मुख से मुक्त हो गई।

बहेलिये ने कहा—"देवि!तुम समीप के ही स्वच्छ सलिल वाले सरोवर में स्नान करके स्वस्थ हो जाओ, ये कन्द मूल फल है इन्हें खा लो। अब चिन्ता की कोई बात नहीं।

रोते-रोते रानी के आँसू सूख गयेथे, भागते-भागते पैरों में पीड़ा हो रही थी, भूख के कारण उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गई थीं। अतः उन्होंने समीप के सरोवर में स्नान किया स्नान करने से चित्त स्वस्थ हुआ। कुछ फलमूल भी खाये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सुन्दरता कहीं कहीं अभिशाप

मेरी आज्ञा से।" यह सुनकर राजा पुनः मूर्छित हो गये। वे हाथ फटफटाने लगे और नेत्रों से अश्रु बहाने लगे।

छप्पय

बिना वत्स के धेनु सरिस माता रथ घेरयो।
रोवत लखि नर नारि राम मुख रथ में फेरयो॥
बिहरैं बाल बखेरि राम कहि रोवै जननी।
बहैं नयन जल धार भई गीली सब धरती॥
राम कहाँ लछमण कहाँ, बड़ भागी सीया कहाँ।
मैं हू जाऊँ संग मँह, जाइँ लाल मेरे जहाँ॥
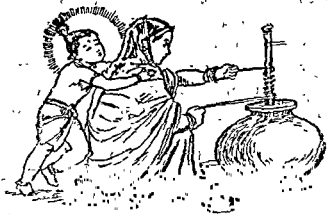
समीप ठहरे हुए उस वणिक समूह पर जङ्गली हाथियों ने आक्रमण किया और दावानल भी लग गई, लोगों ने इस अनिष्ट का कारण दमयन्ती को ही समझा। वे उसे मारने की सोचने लगे। दमयन्ती उनके मनोगत भावों को समझ कर अकेली ही रात्रि में वन से चलदी। चलते-चलते उसे किसी राजा की बड़ी भारी राजधानी दिखाई दी। आधी धोती पहिने हुए दमयन्ती ने उस राजधानी में प्रवेश किया।

वह राजधानी धर्मात्मा सुबाहु राजा की थी उनकी राजमाता बड़ी दयावती पतिव्रता और सती थीं। संयोग की बात है, कि जब दमयन्ती ने नगर में प्रवेश किया तब वह अपनी चित्रसारी की छत पर खड़ी झरोखे से राजपथ की ओर देख रही थीं दमयन्ती के बाल बिखरे थे,आधी धोती में से उसका सौंदर्य खान से निकली मणि के समान फूट-फूट कर निकल रहा था। नगर के लड़कों ने उसे पगली समझा वे उसे चिढ़ाने लगे और ढेले मारने लगे दमयन्ती विवशता के साथ अपने को उनसे बचाने लगी। सुबाहु महाराजकी राजमाताको दमयन्तीकी दशा देखकर बड़ी दया आई और उसने तुरन्त अपनी दासी को बुलाकर कहा "देखो यह कौन विपत्ति की मारी स्त्री है? देखने से तो यह कोई राजवंश की प्रतीत होती है। इसके अङ्गों में आभूषण नहीं तन पर वस्त्र नहीं। ऐसी सुन्दरी स्त्री को इतना क्लेश! यह दैव की विडम्बना है। इसे तुरन्त मेरे पास लाओ। मैं शक्ति भर इसके दुख को दूर करने का प्रयत्न करूँगी।"

रानीकी ऐसी आज्ञा सुनकर दासी तुरन्त गई और लड़कों को हटाकर वह दमयन्ती को रानी के पास ले आई। रानी ने

हैं, भरत उसे जीवन में चरितार्थ करके दर्शाने वाले हैं। राम शरीर हैं, दशरथ प्राण रूप में उसमें संचार करते हैं। सीता उसकी छाया हैं, भरत उसमें प्रेम हैं, लक्ष्मण उसके ओज हैं, कौशल्या उसे उत्पन्न करने वाली हैं, शत्रुघ्न अनुराग हैं। धनुष बाण हाथों के स्थानीय हैं, राक्षस मृगया करने के पशु हैं। भालु कपि उस शरीर के अन्य अङ्ग उपाङ्ग हैं। प्रेम के बिना देह किस काम की है, शरीर में मुख्य वस्तु है प्रेम। इसी प्रकार राम के चरित्र में मुख्य है भरत का चरित। विरह की सजीव मूर्ति के दर्शन करने हों, राम के प्रेम का साकार स्वरूप देखना हो, तो वह भरत के पावन चरित में मिलेगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! नगर से निकल कर श्रीराम वन की ओर चले। बूढ़े-बूढ़े ब्राह्मण बगुला के पंखें के समान अपने श्वेत बालों को बखेरे पैदल ही श्रीराम के रथ के पीछे दौड़ रहे थे। जिन वृद्ध ब्राह्मणों का महाराज दशरथ भी अत्यधिक आदर करते थे, उन्हीं ब्राह्मणों को आज नंगे पैरों पैदल ही रथ के पीछे पीछे दौड़ते देखकर श्रीराम शीघ्रता से रथ के नीचे उतर पड़े और बोले—"ब्राह्मणो! मैं आपकी अनुकम्पा का अत्यधिक आभारी हूँ। आपने मेरे प्रति अत्यन्त अनुराग प्रदर्शित किया। अब आप लोग लौट जायँ। भरत आपका आदर करेगा, वह आपकी समस्त आज्ञाओं का पालन करेगा। चौदह वर्ष के पश्चात् मैं आकर आप के पाद पद्मों में पुनः प्रणाम करूँगा। आप पैदल चल रहे हैं, इसमें मुझे बहुत कष्ट हो रहा है।"

ब्राह्मणों ने कहा—"राघव! तुम धर्मात्मा हो, शरण रक्षक हो, गौ, ब्राह्मणों के प्रतिपालक हो। आपने हमारी समस्त इच्छाएँ सदा पूर्ण की हैं। आप हमारी इस इच्छा को भी पूर्ण कीजिये। हम किसी भी प्रकार कैकेयी के अधीन न रहेंगे हम

हुआ और वह राजकुमारी सुनन्दा की सहेलियों के साथ रहने लगी। सुनन्दा उसे बहिन की तरह प्यार करती, किन्तु दमयन्ती को तो अपने प्राणनाथ की चिन्ता थी।

इधर महाराज नल दमयन्ती को छोड़कर आगे चले। मार्गमें कर्कोटक नाग ने उन्हें डस लिया, इससे उनका सम्पूर्ण शरीर काला पड़ गया, कोई भी उन्हें देखकर पहचान नहीं सकता था कि ये निषाद देश के नरेश महाराज नल हैं। तब महाराज नल चलते-चलते अयोध्या पुरी में आये और उन्होंने महाराज ऋतुपर्ण के यहाँ रथ हाँकने की नौकरी ठीक करली। राजा इनके गुणों से विमुग्ध हो गये और कहा—"तुम मुझे अश्वहृदय विद्या सिखादो, मैं तुम्हें अक्षहृदय विद्या पाँसा फेंकने की विद्या सिखा दूँगा। महाराज नल तो यह चाहते ही थे अतः वे महाराज ऋतुपर्ण से अक्षहृदय सीखने लगे और उन्हें अश्व सञ्चालन विद्या सिखाने लगे। महाराज के हाथ के भोजन मे ऐसा स्वाद था कि राजा उनके अधीन से हो गये।

इधर दमयन्ती के पिता महाराज भीमको जब नल को जुएमें हारने का और दमयन्ती को वन में छोड़ कर कहीं चले जाने का समाचार मिला यो उन्होंने सहस्रों ब्राह्मणों को सभी देशों में अपनी पुत्री और दामाद का पता लगाने के लिये भेजा। एक सुदेव नामक परम बुद्धिमान ब्राह्मण खोजता खोजता चेदिराज आया जहाँ दमयन्ती महाराज सुबाहु के महलों में रहती थी। कुमारी सुनन्दा की दासियों में मलीन वसन पहिने दमयन्ती को देख कर विप्रवर सुदेव को हर्ष और दुःख दोनों ही हुए। हर्ष तो इस बात से हुआ कि मैंने दमयन्ती का पता लगा लिया और दुःख उसकी दयनीय दशा देख कर हुआ। सुदेव शीघ्रता से भीतर गया। एकान्त में उसने दमयन्ती से कहा—"बेटी! तू मुझे

कर गये। राजा के परलोक पधारने पर इच्वाकुवंश रक्षक भगवान वशिष्ठ ने उनके मृतक शरीर को एक तैल के कड़ाह में रखवा कर तुरन्त दूतों द्वारा भरत शत्रुघ्न को कैकेय देश से बुलवाया। भरतजी ने आते ही अयोध्या पुरीको विधवा स्त्री की भाँति श्रीहीन, कान्तिहीन तथा आनन्द उत्सव विहीन देखा। उन्हें सम्पूर्ण नगरी सूनी सूनी दिखाई दी। सभी प्राणियों के मुख मलीन दिखाई दिये। सभी के ऊपर उदासी छाई हुई थी। वे प्रथम कैकेयी के भवन में गये। कैकेयी ने ललककर अपने लाल को गोद में बिठाया। अपने पीहर की परिवारवालों की कुशल पूछी। और भरत से राज्य करने को कहा। भरत ने जब पितृ मरण बन्धु वियोग की बात सुनी तो वे मूर्छित हो गये। उन्होंने कैकेयी को बहुत भला बुरा सुनाया। शत्रुघ्न ने मंदमति मंथरा की मनमानी मरम्मत की। भरत अपनी माता कौशल्या के समीप आये। उन्होंने रो रो कर सैकड़ों शपथ खाकर यह सिद्ध करना चाहा कि माता के मत में मेरी तनिक भी सम्मति नहीं। भरत को दुखी देखकर कौशल्या ने उनका सिर सूँघा और बार बार उन्हें पुचकार कर प्यार पूर्वक धैर्य बँधाते हुए माँ ने कहा—"भरत! मैं स्वप्न में भी यह नहीं सोच सकती हूँ, कि भरत कभी भूल में भी अपने भाई राम के विरुद्ध आचरण करेगा। राम को संसार में यदि कोई प्यारा है, तो वह भरत ही है। वह वन जाते समय बार बार सब से यही कहता था। मेरा प्राणों से भी प्यारा भरत राजा होगा। इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात मेरे लिये दूसरी हो ही नहीं सकती। तुम सब भरत के अनुकूल रहना। कभी भूल में भी उनके विपरीत आचरण न करना।" भरत का नाम लेते ही राम के रोमाञ्च हो जाते थे। बेटा! तुम मेरी ओर से तथा

प्यारी पुत्री दमयन्ती है। निषध देश के महाराज नल की ये पत्नी हैं,इनके पति जूए में सर्वस्व त्याग कर इन्हें वन में छोड़कर कहीं चले गये। मैं इनके पिता के यहाँ का ब्राह्मण हूँ, सहस्रों ब्राह्मण महाराज ने इन्हें खोजने भेजे हैं। सौभाग्य की बात है, कि यह मुझे यहाँ मिल गई।"

इतना सुनते ही राजमाता ने दौड़कर दमयन्ती को छातीसे चिपटा लिया और रोते रोते कहा—"बेटी! अरे तेरी ऐसी दुर्दशा। तैंने मुझे अपना परिचय तक नहीं दिया। मैंने तो जब तू छोटी थी, बहुत दिन तुझे गोद में खिलाया है। मैं तेरी छोटी मौसी हूँ, तेरी माँ मेरी सगी बहिन है। हम दोनों ही दशार्ण देशाधिप महाराज सुदामा की पुत्रियाँ हैं,तेरे माथे पर एक मस्सा था। अब तो मलावृत्त होने के कारण वह दीखता ही नहीं। सुनदा ने जब सुना यह तो मेरी मौसी की लड़की है, तब तो वह उसके पैरों पर पड़ गई और रोती रोती बोली—"बहिन! अज्ञान में ऐश्वर्य के मद में दासी समझ कर मैंने तुम्हारा बहुत अपमान किया होगा, उसे तुम क्षमा कर देना।"

कसकर सुनन्दा को अपनी छाती से चिपटाते हुए दमयन्ती ने उसके सम्पूर्ण वस्त्रों को अपने अश्रुओं से भिगोते हुए कहा—"बहिन! इस विपत्ति में तुमने ही मुझे आश्रय दिया, नहीं तो मैं अब तक कभी भी जीवित न रहती।"

राजमाता ने कहा—"बेटी! यह तेरा घर है, तू यहीं रह।"
दमयन्ती ने कहा—"मौसी जी! मेरा घर तो है ही, किन्तु मेरे दो बच्चे मेरे पिता के यहाँ है पिताजी भी मेरे लिये चिन्तित होंगे अतः तुम मुझे विदर्भ ही पहुँचा दो।"

महाराज दशरथ के समस्त श्रौर्ध्व दैहिक कृत्य कराये। तेरहवें दिन समस्त कृत्यों को समाप्त करके भरतजी सेना सजाकर राज्याभिषेक की समस्त सामग्री लेकर ब्राह्मणों और गुरुओं को आगे करके माताओं के साथ श्रीराम-दर्श की लालसा से पैदल ही चल दिये। सुकुमार भरत के पैरों में पैदल चलने के कारण छाले पड़ गये थे। वे रामप्रेम में भीगे हुए, अनुराग में पग-पग पर स्नान करते, जिह्वा से राम राम रटते, कानों से राम की कमनीय कथा सुनते और हृदय में राम की मनोहर मूर्ति का ध्यान करते हुए राम के समीप जा रहे थे। प्रयाग पहुँचकर भगवान् भरद्वाज से उन्होंने श्रीराम का पता पूछा—भरद्वाजजी ने बताया वे चित्रकूट पर पर्णकुटी बनाकर लक्ष्मण सीता के सहित सुख पूर्वक निवास कर रहे हैं। राम का निश्चित पता पाकर भरत को परम प्रसन्नता हुई, उन्होंने मुनि के आग्रह से उनका आतिथ्य ग्रहण किया और प्रातः तरणि तनूजा भानुनन्दिनी यमुना को पार करके वे चित्रकूट की ओर चल दिये। दूर से ही लक्ष्मण ने चतुरंगिणी सेना सहित भरत को आते देखकर उन पर संदेह किया। श्रीराम ने उनके सन्देह का निवारण करते हुए कहा—"भरत के हृदय में भी यदि राज्य के प्रति लोभ और मेरे प्रति वैर का भाव हो जाय, तब तो यह पृथिवी रसातल को ही चली जाय। भरत वे कमलपत्र हैं जो जल में रहते हुए भी उससे सर्वथा पृथक् रहते हैं। भरत यद्यपि इक्ष्वाकुवंशरूप पयसे ही पैदा हुए हैं, किन्तु वे ऐसे घृत हैं जो पय से पृथक् ही अपनी सत्ता रखते हैं। भरत मेरे हृदय हैं वे मेरे प्राण हैं, वे जीवन हैं। मैं सबके बिना रह सकता हूँ, भरत के बिना मेरा अस्तित्व नहीं। भरत ऐसे रत्न हैं, कि जिनकी समता का संसार मे दूसरा रत्न नहीं। भरत यद्यपि वय में मुझसे

नहीं देतीं। उसके पति ने उसे विवश होकर छोड़ा है किन्तु वह प्रति पल उसका हृदय से स्मरण करता रहता है, शरीर से पृथक् होने पर मन से वह मिला है। योजन और कोशों का व्यवधान हार्दिक मिलन में विघ्न नहीं डाल सकता। समय आने पर उसके पति का पुनः मिलन होगा।" इतना संदेश कह कर नल चले गये। ब्राह्मण ने विदर्भ में जाकर दमयन्ती से ये सब बातें कहीं यह सुनकर दमयन्ती को बड़ा हर्ष हुआ। उसने अपनी माता से सम्मति करके पिता को बिना जताये सुदेव नामक उसी बुद्धिमान् ब्राह्मण को अयोध्या भेजा। महाराज ऋतुपर्ण पहिले ही दमयन्ती के रंगरूप पर आसक्त थे। उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया था, कि किसी प्रकार दमयन्ती मुझे प्राप्त हो जाय, किन्तु जब दमयन्ती ने लोकपालों को भी परित्याग करके नल को पति रूप में वरण कर लिया तो वे निराश हुए। फिर भी दमयन्ती के प्रति जो उनका अत्यधिक अनुराग हो गया था वह कम नहीं हुआ। दमयन्ती को यह बात विदित थी। अतः राजा नल को यहाँ बुलाने के लिये उसने एक षड्यन्त्र रचा। सुदेव से उसने कहा—"तुम जितने भी शीघ्र जा सकते हो, अयोध्या पुरी में जाओ और वहाँ के राजा ऋतुपर्ण से कहना—"दमयन्ती फिर से स्वयम्वर करना चाहती है, उसके पति उसे छोड़कर चले गये उनका कोई पता नहीं। किन्तु स्वयम्वर कल ही होगा। यदि आप एक रात्रि में अयोध्या से विदर्भ (बरार) पहुँच सके तो स्वयम्वर में सम्मिलित हों।"

सुदेव दमयन्ती की बात सुनकर शीघ्रता से अवध पुरी में गये और वहाँ एकांत में जाकर राजा से सब बातें कहीं। सुनकर राजा के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा, उसने अपने बाहुक नामक प्रधान सारथी को बुलाकर कहा—"बाहुक। यदि आज दिन

की शारदा में भी शक्ति नहीं। वह अनुपम मिलन था। श्री राम बड़ी देर तक अपने छोटे भाई को छाती से छिपटाये रहे, भरत ने आँसुओं से श्रीराम के समस्त वस्त्र भिगो दिये। उन्होंने सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर दिया था, श्री राम उन्हें साधे थे। श्रीराम ने ज्यों ही उन्हें पृथक् करना चाहा त्योंही वे कटे वृक्ष की भाँति मूर्छित होकर गिर पड़े। श्रीराम ने शीघ्रता से उन्हें उठाया। शत्रुघ्न ने भी श्रीराम की सहायता की। श्रीराम ने भरत की धूलि झाड़ी उन्हें गोदी में बिठाकर उनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"भरत! तुमने ये बाबा-जियों की सी जटायें क्यों बना ली हैं, तुम वल्कल वस्त्र पहिन कर कृष्ण मृगचर्म क्यों ओढ़े हो? तुम इतने दुर्बल क्यों हो गये हो? तुम्हारे ओठ सूख क्यों रहे हैं? तुम इस बीहड़ वन में अकेले कैसे आ गये? तुम्हारे सेवक कहाँ हैं! पिताजी के बिना तुम यहाँ कैसे आये? मेरे पूजनीय पिता कहाँ हैं? वे अकेले तो तुम्हें आने की अनुमति दे ही नहीं सकते! वे भी अवश्य ही आये होंगे? यदि वे नीचे हैं तो, चलो पहिले हम उन्हें ले आवें। तुम बताते क्यों नहीं? तुम निरन्तर रो क्यों रहे हो? तुम्हारे रोने से मेरा हृदय शंकित हो रहा है, शीघ्र ही मुझे पिता की कुशल सुनाओ।"

पिताजी के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर भरत और भी अधिक रोने लगे। शत्रुघ्न भी बालकों की भाँति बिलखने लगे।

श्रीराम ने शंकित चित्त से कहा—"भरत! मुझे बड़ी व्याकुलता हो रही है। तुम्हारे रुदन से मेरे हृदय के टुकड़े टुकड़े हो रहे। कहीं मेरे पूजनीय वृद्ध पिता परलोक प्रयाण तो नहीं कर गये! कहीं वे मेरे विरह में सुरलोक तो नहीं सिधार गये तुम मुझे सच सच बता दो।"

माप सब ही परिवर्तित हो गये थे, किन्तु उनकी अंग संचालन की गतिविधि को देखकर वार्ष्णेय को बार-बार संदेह होने लगा।

इतने ही में रथ से अत्यन्त शीघ्र चलने के कारण महाराज ऋतुपर्ण का दुपट्टा गिर गया। उसी क्षण राजा ने शीघ्रता से कहा—"बाहुक ! तनिक रथ को रोक दे, मेरा दुपट्टा गिर गया, वार्ष्णेय दौड़कर उसे उठा लावें।" इतने शब्दों को सुनते ही हँसकर नल बोले—"राजन्। आपने जितनी देर में ये शब्द कहे है उतनी देर में रथ दो कोश दूर निकल आया। अब आप दुपट्टे की आशा न रखें।'

राजा को नल की इस अश्वविद्या तथा रथ-संचालन चातुरी पर बड़ा आश्चर्य हुआ। रथ में बैठे ही बैठे राजा बोले— "बाहुक जैसे तुम अश्वविद्या में निपुण हो, वैसे ही मैं गणना करने में निपुण हूँ, देखो सामने जो यह बहेड़े का वृक्ष है इसकी दोनों डालियों पर और टहनियों पर पाँच करोड़ पत्ते और दो हजार पिचानवे फल लगे हैं।"

इतना सुनते ही नल के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा उसने रथ को लौटाकर बहेड़े के सम्मुख खड़ा कर दिया और रथ से उतर कर बोले—"राजन् ! जब तक मैं इस पेड़ के सब पत्ते और फलों को गिनकर अपने कुतूहल को शांत न कर लूंगा, तब तक आगे न बढ़ूंगा।"

इस पर विनती करते हुए राजा ऋतुपर्ण ने कहा—'भैया, देखो ! विलम्ब हो रहा है, तुम हठ मत करो पीछे आकर मैं स्वयं अपनी परीक्षा दे दूँगा।"

राजा नल ने दृढ़ता के स्वर में कहा—"राजन् ! आप चाहें

अब तो मेरा अवध में जाना ही व्यर्थ है, पिता से विहीन पुरी में कैसे मैं पैर रखूँगा। देखो, मैं कितना अभागा हूँ, मेरे ही कारण पिताजी परलोक वासी हुए, मेरे वियोग में ही उन्होंने प्राणों का परित्याग किया, मैं ऐसा अभागा निकला कि उनके मृतक संस्कार भी न कर सका। भरत! तुम ही धन्य हो, तुम ही बड़ भागी हो पिता के वास्तविक पुत्र तुम ही हो, जो तुमने स्वर्गीय महाराज के समस्त संस्कार स्वयं ही किये। हाय! मुझे क्या पता था, पिताजी मुझे छोड़कर परलोक पधार जायँगे—"इस प्रकार श्रीराम जी पिता के लिये चिरकाल तक विलाप करते रहे। अन्त में वे उठे भरत और शत्रुघ्न को साथ लिये हुए वे कुटी की ओर चले। दूर से ही उन्होंने लक्ष्मण और सीताजी को बुलाकर कहा—"लक्ष्मण! तुम पितृहीन हो गये। वैदेही! तुम्हारे पूजनीय श्वसुर परलोक वासी बन गये। यह सुनकर लक्ष्मण रोने लगे। सीताजी भी विलाप करने लगीं। तब श्रीराम ने कहा—"लक्ष्मण! मेरे बल्कल उठा लो, कुशा ले लो चलो भगवती मंदाकिनी पर चलकर अपने पूजनीय पिता को जल दे आवें। सीता तुम आगे आगे चलो। मंगल कार्यों में स्त्रियाँ पीछे चलती हैं और मृतक कार्यों में आगे आगे। यही सनातन परिपाटी है। यह सुनकर सीता आगे आगे चलीं। उनके पीछे वल्कल लिये लक्ष्मण जी थे। श्रीराम के साथ भरत शत्रुघ्न भी चले।

पयस्विनी मन्दाकिनी के उस पंक रहित घाट पर जहाँ श्रीराम नित्य स्नान को जाते थे जानकी के सहित चारों भाई गये। रोते रोते श्रीराम लक्ष्मण आदि ने अपने पिता के उद्देश से जल तर्पण किया; फिर इंगुदी और बेर के फलों को लेकर आँख में आँसू भरकर श्रीराम ने कहा—"पिताजी! हम वनवासियों

रथ को हांक दिया और सूर्यास्त से पूर्व ही वे राजा को लेकर विदर्भ देश की नगरी कुन्डिनपुर में पहुंच गये। राजा नल के रथ की घड़घड़ाहट सुनकर उनके कुन्डिनपुर में रहने वाले घोड़े हिनहिनाने लगे। दमयन्ती ने जब रथ की घड़घड़ाहट सुनी तो उसे विश्वास हो गया, कि इस रथ को मेरे पति ही हांक रहे है, ऐसा शब्द उनके रथ चलने से ही होता है।

कुन्डिनपुर में स्वयंवर की किसी प्रकार भी कोई तैयारी नहीं थी न कोई राजा तथा राजकुमार ही आये थे, न पुरी ही सजाई गई थी। महाराज ऋतुपर्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराज भीम ने जब सुना कि अयोध्या के महाराज ऋतुपर्ण मेरे यहाँ पधारे हैं, तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। अत्यन्त आह्लाद के सहित उनका स्वागत सत्कार किया कुशल प्रश्न के अनन्तर महाराज प्रसंग वश पधारने का कारण जानना चाहा। महाराज ऋतुपर्ण ने स्वयंवर की कुछ भी तैयारियाँ न देखकर बात को टालते हुए कहा—"आप के दर्शन हुए बहुत दिन हो गये थे इसीलिये मिलने मिलाने चला आया।"

महाराज भीम ने कहा—"यह मेरा अहोभाग्य आप यहाँ विराजें। मेरा राज्यपाट आपका ही है, मैं भी आप का ही हूँ। महाराज ऋतुपर्ण बड़े चक्कर में पड़े। मुझे ऐसी सूचना किसने और क्यों दे दी। राजा से पूछने को भी उन्हें साहस नही हुआ। कन्यादान जीवन में एक बार ही होता है, कुलवती कन्या एक ही बार पतिवरण करती है। अतः वे तुरन्त लौटने के लिये आग्रह करने लगे। राजा भीम ने कहा—"महाराज। आप सौ योजन से भी अधिक यात्रा करके आये हैं। आप हमें अपना नहीं समझते। यहाँ सुखपूर्वक निवास करें।"

यह कहते कहते कौशल्या रोने लगी। उस घाट को प्रथम तीर्थ समझकर कौशल्या ने प्रणाम किया और वहाँ का जल अपने मस्तक पर चढ़ाया। वे कष्ट से ऊपर चढ़ रही थीं।

दूर से ही श्रीराम ने माताओं को अपनी ओर आते देखा। वे भरत के समीप से उठे और आगे आकर उन्होंने कौशल्या के पीछे सिकुड़ी सिमिटी अपने समस्त अंगों को छिपाये उदास मन कैकेयी के पैर छुए, फिर सुमित्रा तथा कौशल्या की चरण वन्दना की। राम को तपस्वी वेष में देखकर कौशल्या रो पड़ीं। उसने पुत्र को तपस्वी वेषमें देखकर आलिंगन भी नहीं किया। उस समय लक्ष्मण ने तीनों माताओं को प्रणाम किया। लक्ष्मण को देखकर माता के धैर्य का बाँध टूट गया। उसने लक्ष्मण को गोदी में बिठाया उसका सिर सूंघा और आँसुओं से उनके मुख और बालों को भिगो दिया। उन्होंने लक्ष्मण के उन हाथों को सुहलाया जिसमें पानी भरने और लकड़ी काटने से ठेक पड़ गयी थी। सुमित्रा राम को देखकर रो रही थीं। उसी समय एक अत्यन्त ही करुण दृश्य उपस्थित हुआ। समीप ही उटज में से सुकुमारी विदेह नन्दिनी निकली। उनके शरीर में अंगराग नहीं लगा था। शरीर धूप और वायु के लगने से रूखा-रूखा हो रहा था। उनका मुख सूखा हुआ था। आँखें रोने से सूज गईं थीं। ओठों पर पपड़ी पड़ रही थी। ऐसी जानकी ने तीनों सासों के पैर छुए और वे भोली बालिका के समान सिर नीचा करके खड़ी हो गयीं। कौशल्या ने रोते-रोते जानकी को बल पूर्वक खींचकर अपनी छाती से उसी प्रकार चिपटा लिया जिस प्रकार अत्यन्त प्रेममयी माँ अपनी इकलौती पुत्री को चिपटाती है। जानकी की ऐसी दशा देखकर तीनों सासें रोने लगीं। श्रीराम ने उसी समय आगे जाकर वसिष्ठजी के पैर छुए। पीछे से लक्ष्मण ने

केशिनी ने ये सब बातें जाकर दमयन्ती से कहीं, सुनकर दमयन्ती का हृदय बाँसों उछलने लगा, फिर भी उसे नल के रूप के कारण सन्देह ही बना रहा। अबके उसने केशिनी से कहा—"तू गुप्त रूप से जाकर उसकी सब क्रियाओं को देखकर मुझे बताना।"

केशिनी गई और सब देखकर उसने बताया वह तो आलौकिक पुरुष है, बिना अग्नि के अग्नि उत्पन्न कर लेता है, रीते घड़ों को संकल्प के पानी से भर लेता है, वह पाक विद्या में बड़ा निपुण है, उसमें अनेक अलौकिक गुण हैं।"

दमयन्ती ने कहा—'उसके हाथ के बने कुछ पदार्थ तू माँग ला।"

केशिनी किसी प्रकार उससे कुछ भोजन की वस्तुएँ माँग लाई, दमयन्ती ने उन्हें चखकर निश्चय कर लिया, ये मेरे पति के बनाये हुए पदार्थ है।"

फिर भी उसे नल के रूप और छोटे आकार को देखकर संदेह बना रहा। अबके दमयन्ती ने केशिन के साथ अपने दोनों बच्चों को नल के पास भेज दिया। उन देव सदृश बच्चों को देखकर नल ने दौड़कर उन्हें छाती से चिपटा लिया और बार-बार प्यार करके उनका मुख चूमने लगे। वे आत्म-विस्मृति होकर बालकों की भाँति रुदन करने लगे। बार-बार बच्चों का सिर सूँघने लगे। उनके ऐसे वात्सल्य प्रेम को देखकर केशिनी को निश्चय हो गया, कि ये पुण्यश्लोक महाराज नल ही हैं।"

कुछ काल के पश्चात् वाह्य ज्ञान होने पर आँसुओं को पोंछते हुए नल बोले—"केशिनी! देख, तू बार-बार मेरे पास मत

रोते-रोते भरत बोले—"महाराज ! मुझे तो कुछ भी अधिकार नहीं। मुझे बल पूर्वक अधिकार दिया जा रहा है, मुझे जो आपके चरणों का ही अधिकार था, वह मेरा अधिकार छीना जा रहा है, मुझे अधिकार हीनकर दिया है। प्रभो ! मैं अपने मनकी क्या कहूँ, आप अन्तर्यामी हैं, घट-घट की जानते हैं। मैं किसे दोष दूँ, सब मेरे भाग्य का ही दोष है। राघव ! मुझे संसार में और कोई सहारा नहीं। आपकी कृपा का आपकी करुणा का आपकी दया का ही सहारा है। मुझ दीन हीन मति मलीन कैकेयी के कुपूत पर कृपा करो, अवध लौट चलो, सबको सनाथ बनाओ। मुझे सेवा का सुअवसर दो मेरी भीख यही है पल्ला पसारकर हाथ जोड़कर पैरों में पड़कर यही मैं आपसे माँगता हूँ। राघव तुमने कभी मुझे निराश नहीं किया, अब भी निराश मत करना तुमने सदा मेरी बात बड़ी की है। हारे हुए खेल को जिताया है, गिरते हुए मुझे उठाया है, रोते हुए मुझे हँसाया है, पहिले मुझे खिलाकर तब खाया है, संयम सदाचार सभी आपने ही सिखाया है। संसार में मेरा कोई भी सहारा नहीं राम ही मेरे सहारे हैं। राम मुझे अब निराश न करेंगे, वे मेरी प्रार्थना पर अवश्य अवधपुरी लौट चलेंगे।"

श्रीरामचन्द्रजी भरतजी की बात सुनकर कुछ भी न बोले, वे गुरु के मुख की ओर देखने लगे। गुरु वशिष्ठ ने कहा—"राम ! तुम अपने छोटे भाई भरत की बातों पर विचार करो। भरत स्वयं नहीं कह रहे हैं, वे सबके भावों को प्रकट कर रहे हैं। अब तो सन्ध्या का समय हो गया। कल इस विषय पर विचार होना चाहिए, गुरु की आज्ञा से उस दिन का समाज भंग हुआ। सभी सन्ध्या वन्दन नित्य कृत्य करने मन्दाकिनि के किनारे चले गये। भरत रात्रिभर श्रीराम को अवधपुरी लौटाने

में प्रवेश करके मेरी बुद्धि भ्रष्ट कर दी। उसी ने मुझसे राज्यपाट छुड़वाया, तुमसे विलग कराया अब जो हुआ सो हुआ। अब कलियुग मेरे शरीर से निकल गया है। अब फिर हमारे दिन फिरेंगे। फिर हम पूर्ववत् सुख और ऐश्वर्य का उपभोग करेंगे। इस प्रकार चौथे वर्ष में पति और पत्नी का पुनः आकर मिलन हुआ। रात्रि भर दोनों पति पत्नी अपने सुख दुख की बातें कहते सुनते रहे। प्रातः काल नल और दमयन्ती ने स्नान किया वस्त्र भूषणों से सुसज्जित होकर उन दोनों ने महाराज भीम को प्रणाम किया। अपनी पुत्री के साथ जामाता को देखकर राजा को बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने इसके उपलक्ष्य में बड़ा भारी उत्सव काराया और ब्राह्मणों को विविध दान दिये।

महाराज ऋतुपर्ण को जब ज्ञात हुआ, ये महाराज नल है, तब तो उन्होंने इनसे क्षमा याचना की। नल ने उन्हें अश्वहृदय विद्या सिखा दी। नल ने भी राजा से अक्ष विद्या भली भाँति सीख ली। कर्कोटक ने अपना विष भी आकर उतार लिया। इससे महाराज पूर्ववत् सुन्दर हो गये। कलियुग उनके शरीर से पहिले ही निकल चुका था अतः अब वे चन्द्रमा के समान सुशोभित हुए। महाराज ऋतुपर्ण भीम और नल से अनुमति लेकर अयोध्या चले गये। कुछ काल कुण्डिनापुर में रह कर नल अपनी प्यारी पत्नी दमयन्ती के साथ कुछ धन और सैनिक लेकर अपनी राजधानी में गये। उन्होंने फिर अपने भाई पुष्कर के साथ जूआ खेला। अबके पुष्कर अपना राज पाट सर्वस्व हार गये। उसने दमयन्ती का अपमान किया था, अतः वह डर रहा था; कि महाराज मुझे मार डालेंगे, किन्तु महाराज नल तो धर्मात्मा थे। उन्होंने कहा—"भैया! पुष्कर! देखो भाग्य ही सब सुख दुख देता है। कौन किसे सुखी दुखी बना सकता है।

का पालन करते हैं। पिता ने मुझे १४ वर्ष के लिए वन दिया है, तुम्हें राज्य दिया है। धर्मपूर्वक तुम प्रजाका पालन करो, मैं वनों में विचरूँ, यही धर्म है यही कर्तव्य है।"

भरत ने रोते रोते कहा—"पिता ने स्वेच्छा से आपको वनवास नहीं दिया है। यह मेरी माँ की कुटिलता का फल है, वह अब अत्यन्त लज्जित है और आपको लौटाने के लिये आई है. वह लज्जावश बोलती नहीं।"

श्रीराम ने कहा—"भरत! मैं तुमसे कहता हूँ, माता को दोष मत दो। जो माता मुझे तुमसे भी अधिक प्यार करती थी, वह मुझे वन कैसे भेज सकती थी। यह सब दैवकी विडम्बना है, प्रारब्ध के खेल हैं, भवितव्यता के कुतूहल हैं। ऐसा ही होने वाला था, जो हो गया सो हो गया। तुम्हें राज्य मिलने वाला था मिल गया, मुझे वन में आना था वन में आगया। पिता के आदेशसे तुम राज्य करने में स्वतन्त्र हो मैं वनों में विचरण करने को स्वतन्त्र हूँ।"

भरत ने कहा—"मैं यदि राज्य करने में स्वतन्त्र हूँ तो उसे दान देने में भी स्वतन्त्र हूँ। माता ने पिता से कहकर राज्य मुझे दिलाया। अब राज्य मेरा हुआ, मैं उसे आपके चरणों पर चढ़ाता हूँ मैं अर्घ्य के सहित राज्य आपको अर्पित करता हूँ, आप मेरी दी हुई भेंट को ग्रहण करें।"

श्रीराम यह सुनकर हँस पड़े और बोले—"अरे, भैया! ऐसे थोड़े ही होता है। अब मुझे राज्य का अधिकार ही नहीं तो उसे ग्रहण कैसे कर सकता हूँ। सन्यासी को कोई स्त्रीदान करे, तो तो यह कैसे ले सकता है। मैंने पिता के सम्मुख प्रतिज्ञा की है, मैं १४ वर्ष वनों में रहूँगा।" फिर तुम्हारे दिये राज्य को बिना वनवास के अवधि समाप्त हुए कैसे ग्रहण कर सकता हूँ।"

यन्ती का तथा अयोध्याधिप महाराज ऋतुपर्ण के नाम का नित्य कीर्तन करते है, उन्हें कलि कृत दोष दुःख नही दे सकते* इसके अनतर आप और क्या सुनना चाहते हैं ?"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी। महाराज ऋतुपर्ण के पुत्र कौन हुए। कृपा करके ऋतुपर्ण से आगे के मुख्य इक्ष्वाकु वंश के राजाओ का चरित्र हमें सुनाइये।"

इसपर सूतजी बोले—"अच्छी बात है, मुनियो ! मै महाराज ऋतुपर्ण से आगे के राजाओं का वृतान्त सुनाता हूँ, आप सब सावधानी के साथ श्रवण करें।"

छप्पय

दमयन्ती पति तजी भाग्यवश आई पितु घर।
पति खोजन हित रच्यो दुवारा मृषा स्वयम्वर ॥
नल ऋतुपर्ण समेत ससुर गृह रथले आये।
नल दमयन्ती मिले सुनत सब जन हरषाये ॥
कायातें कलियुग भग्यो, जब नृप के दिन फिरि गये।
गयो राज फिरितें मिल्यो, जग यश भागी नल भये ॥

---

*कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्यच।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्

आँखें सदा खुली की खुली रह जायँगी।"-इतना कह कर कुशकी चटाई लेकर भरत लेट गये।"

भरत के ऐसे अनुराग को देखकर सभी अश्रु बहाने लगे। माताओं को हर्ष भी हुआ, दुःख भी। हर्ष तो भरत के भ्रातृ प्रेम के कारण था और दुःख था भरत के अनशन के दृढ़ निश्चय पर भरत को भूमि पर कुशकी चटाई बिछाये एक करवट लेटते देखकर कारुणिक राम उनके समीप गये। उनके सिर को गोदी में रखकर उनकी जटाओं को उंगलियों से शनैः शनैः सुलझाते हुए वे बोलें—"भरत! यह तुम धर्म विरुद्ध हठ कर रहे हो। देखो ब्राह्मण शस्त्र नहीं उठा सकता। जब वह किसी क्षत्रिय को या धर्म जानने वाले बलवान् को अन्याय करते देखता है तो उसके अन्याय के विरोध में अनशन करके एक करवट लेटे रह कर उसे अन्याय से रोकता है। प्राणों का प्रण लगाकर वह उस बलवान् के विचारों को या तो बदल देता है या स्वयं प्राणों की आहुति दे देता है। ऐसा करने का अधिकार निःशस्त्र ब्राह्मण के लिए ही है। क्षत्रिय तो जिसे अन्याय करते देखे उसे शस्त्र लेकर युद्ध में मार डाले। देखो मैं कोई अन्याय नहीं कर रहा हूँ जो तुम मेरे ऊपर प्रायोपवेशन कर रहे हो। तुम निःशस्त्र ब्राह्मण नहीं जो भूखे रहकर एक करवट से सो रहे हो। यदि तुम्हें मैं अन्याय करता हुआ प्रतीत होता हूँ तो क्षत्रिय धर्म के अनुसार तुम मेरा वध कर दो।"

यह सुनकर रोते रोते भरत जी उठ पड़े और बोले—"राघव! आप जैसे मानोगे वैसे मैं आपको मनाऊँगा, जैसे भी आप अवध लौटोगे वैसे लौटाऊँगा। जो भी आप प्रतिज्ञा कराओगे वह प्रतिज्ञा करूँगा, किन्तु आपको अवध लौटा कर ले

प्रकार के सर्वज्ञ होते हैं, एक तो ऐसे होते हैं, जिन्हें सर्वदा ही अखण्ड ज्ञान बना रहता है। दूसरे ऐसे होते है जो जब वे वाह्य व्यवहार में लगे रहते है, तो उनका ज्ञान सर्व साधारण पुरुषों के समान होता है, किन्तु जब वे चित्त को समाहित करके ध्यान मग्न होते है,तब होने वाले भूत, भविष्य तथा वर्तमान का समस्त ज्ञान हस्तामलकवत् होने लगता है। यह जो शापाशापी होती है ऐसे ही सर्वज्ञ मुनियों द्वारा होती है, जैसा होन हार होता है, वैसे ही बुद्धि बन जाती है, वैसे ही उनके मुख से अकस्मात् शाप निकल जाता है पीछे ध्यानस्थ होकर उसके विषय में विचार करते हैं, तो उसके प्रतीकार की अवधि या उपाय भी बता देते हैं। कोई न किसी को शाप दे सकता है, न असमय पर अनुग्रह ही कर सकता है। जिसका जैसा समय होता है,उसके वैसे ही सब संयोग जुट जाते हैं। भविष्यता चलकर स्वयं नहीं जाती, उसे ही घेर बटोर कर ले आती है।

श्री शुकदेवजी कहते है–"राजन् ! यह तो मैं बता ही चुका हूँ, कि इक्ष्वाकुवंश में अयुतायु के सुत नल के सखा ऋतुपर्ण हुए। धर्मात्मा महाराज ऋतुपर्ण के पुत्र सर्वकाम हुए। सर्वकाम के सुत सुदास हुए जो कल्माषपाद और मित्रसह के नाम से भी प्रसिद्ध हुए। जो वशिष्ठ जी के शाप से नर भक्षी राक्षस हो गये थे।"

इस पर महाराज परीक्षित् ने पूछा–"प्रभो ! धर्मात्मा राजा सुदास राक्षस किस अपराध से हो गये ? सर्वज्ञ महर्षि वशिष्ठ ने अपने प्रिय शिष्य सुदास को ऐसा कठिन शाप किस कारण दिया ?"

इस पर श्री शुकदेवजी बोले—"कोई किसी को दुख सुख

यह निन्दनीय धर्म होगा। स्वयं सम्मान का उपभोग करने की अपेक्षा सम्मान देना सबसे श्रेष्ठ है। जो दूसरे को सम्मान नहीं दे सकता वह सच्चा सम्माननीय नहीं। हम भाइयों को चाहिये, कि परस्पर में एक दूसरे का सम्मान करें। मैं जो कह रहा हूँ उस बात को तुम्हें मानना चाहिये। प्रेम समीप में रहने से भी होता है और दूर रहने पर भी। प्रेम का सम्बन्ध शरीर से उतना नहीं है जितना हृदय से। शरीर की दूरी से प्रेम में व्यवधान नहीं पड़ता। यही नहीं, शरीर दूर रहने से प्रेम और बढ़ता है। परदेश में स्थित प्रियतम के प्रति जो प्रेम होता है, वह सामीप्य में नहीं। परदेशी प्रियतम से तो मन प्रति पल मिला रहता है। तुम्हारा मेरे प्रति कैसा अनन्य अनुराग है इसे मैं तो जानता था, जनता इसका अनुभव भी नहीं कर सकती थी। गुरुदेव ने बार बार प्रेरणा करके उसे सबके सम्मुख प्रकट करा दिया। तुम मेरे ऊपर विश्वास रखो,१४ वर्ष के पश्चात् सकुशल लौटकर मैं अपने राज्य को सम्हाल लूँगा। तब तक तुम्हारे पास वह धरोहर के रूप में रहेगा। भरतजी राम के ऐसे वचनों से प्रसन्न हुए। वे बोले—"मैं पहिले ही कह चुका हूँ, आपकी आज्ञा तो मुझे सभी भाँति माननी ही होगी, किन्तु मैं दिन गिनता रहूँगा। १४ वर्ष होने के दूसरे दिन आप न आये, तो मैं धधकती हुई अग्निमें अविलम्ब प्रवेश कर जाऊँगा, तब आप मुझे दोष न दें।"

श्रीराम ने दृढ़ता के स्वर में कहा—"नहीं, ऐसा न होगा, मैं अवश्य ही अवधि समाप्त होते, तुम्हारे समीप आ जाऊँगा।"

श्रीराम के ऐसा आश्वासन देने पर भरत ने सुवर्ण की चरण पादुकाएँ निकालीं। और श्रीराम से बोले आप इन्हें चरणों में धारण करके मुझे प्रदान कर दें। राजगद्दी पर ये ही चरण

मुनि ने कहा—"झूठ बोलता है, मैंने तुझे कब ऐसी आज्ञा दी।"

राजा ने कहा—"प्रातःकाल ही आपने आकर मुझ से कहा था, कि मेरे लिये नरमास बनाना।"

मुनि ने कहा—"मैं प्रातःकाल यहाँ आया भी नहीं।"

राजाने दृढ़ता के स्वर में कहा—"नहीं, आप आये थे और स्वयं मुझ से आपने कहा था।"

राजा की दृढ़ता और निर्भीकता से प्रभावित होकर मुनि ने ध्यान लगाया और ध्यान में सभी बातें जानकर नम्रता के साथ बोले—"राजन् ! भूल हो गई राक्षस की यह सब करतूत है। जिस राक्षस के भाई को आपने मारा था,उसी ने मेरा रूप बना लिया था, और उसी ने रसोइये का रूप रखकर इस अभक्ष्य पदार्थ को बनाया है, किन्तु मैंने कभी हँसी में भी झूठ नहीं बोला, अतः आपको नर भक्षी राक्षस तो बनना ही पड़ेगा, किन्तु जीवन भर नहीं। १२ वर्ष के पश्चात् आपका राक्षसपना छूट जायगा आप फिर राजा हो जायँगे।"

राजा को इस बात पर बड़ा क्रोध आया। गुरु अकारण ही बात को बिना जाने मुझे शाप दे रहे हैं यह इनका कार्य अनुचित है। राजा भी सामर्थ्यवान् थे,अतः वे भी हाथ में जल लेकर गुरु वशिष्ठ को शाप देने को उद्यत हो गये।

गुरु को शाप देते देखकर महाराज की पत्नी मदयन्ती ने राजा को रोकते हुए कहा—"प्राणनाथ ! आप यह क्या कर रहे हैं। यह कार्य आपके अनुरूप नहीं है। गुरु को कभी भी शाप न देना चाहिये।"

जीवन को राममय बना लिया था। वे 'राम' सुनते ही चौंक पड़ते, राम कहते ही रो पड़ते। 'राम' स्मरण करते ही उनका

शरीर रोमाञ्चित हो उठता। राम ही उनके जीवन के आधार थे, राम ही उनके इष्ट थे, राम ही आराध्य थे और राम के आगमन की प्रतीक्षा में पल पल को गिन रहे थे। चित्त में राम मिलन की

यह सुन कर श्री शुक बोले—"राजन् ! अपनी प्यारी पत्नी मदयन्ती जो मित्र के समान है उसकी बात को सहने मानने के कारण ही महाराज का नाम मित्रसह पड़ा। उन्होंने स्त्री के कहने से गुरु को शाप नहीं दिया। अब वे राक्षस हो गये। हो क्या गये, आकृति तो उनकी मनुष्यों जैसी ही रही, किन्तु जङ्गलो में घूम-घूम कर मनुस्यों को खाने लगे और राक्षसों जैसी चेष्टायें करने लगे। सुनते हैं, भगवान् वशिष्ठ के पुत्र शक्ति को भी विश्वामित्र जी की प्रेरणा से ये ही राजा खा गये थे। विश्वामित्र जी की वशिष्ठ जी से पुरानी लाग डॉट थी। जब वशिष्ठजी के ही शाप से राजा राक्षस हो गये, तो उन्होने इन्हें प्रेरणा करके शक्ति के पास भेजा और ये शक्ति को खा गये। शक्ति की पत्नी गर्भवती थी उसी से पराशर जी का जन्म हुआ। जिन्होंने पिता का बदला लेने के लिये एक राक्षस यज्ञ आरम्भ किया। जिसमें बहुत से राक्षस आ आकर जल ने लगे। यह देख कर राक्षसों के जनक भगवान् पुलस्त्य आये और उन्होने वशिष्ठ के साथ इन्हें समझाया बुझाया। तब कही जाकर वे इस अभिचार यज्ञ से उपरत हुए। राजा ने राक्षस भावापन्न होकर बहुत से पाप किये। ब्रह्म हत्याएँ कीं। इसी समय महाराज को अनपत्य होने का शाप भी मिला, जिससे वे स्वय संतति उत्पन्न करने में असमर्थ हो गये।"

यह सुन कर महाराज परीक्षित् ने पूछा—"भगवन् ! महाराज कल्माष पाद को किसने अनपत्य हाने का शाप दिया। महाराज ने उसका ऐसा कौन सा अपराध किया था, इस कथा को श्रवण करने की मेरी बड़ी उत्कट अभिलाषा है, यदि आप मुझे अधिकारी समझते हों और कोई न कहने योग्य बात न हो, तो कृपा करके इसके कारण को मुझे अवश्य सुनाइये।"

वनविहारी राम

(६६०)

रक्षः स्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धे-
स्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून् ।
जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीय
कोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥*

(श्री भा० ९ स्क० १० अ० ९ श्लो०)

छप्पय

चित्रकूट तैं चले राम इत दंडक बन महँ।
निरखि राम सिय लखन होहिं मुनि प्रमुदित मन महँ॥
अत्रि अगस्त्य सुतीक्ष्ण आइ मुनि पावन कीन्हें।
भये कृतारथ सबहिं स्वयं हरि दरशन दीन्हें॥
बसहिं राम सिय संग महँ, पंचवटी महँ करि कुटी।
रामरूप फँसि भई जहँ, रावण भगिनी नककटी॥

यह संसार आकर्षण से ही चल रहा है आकर्षण नहीं तो संसार नहीं। सूर्य पृथ्वी को अपनी ओर खींचते हैं। पृथ्वी सूर्य

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! दंडकारण्य में श्रीरामचन्द्रजी हाथ में दुर्जय धनुप बाण धारण किये बड़ी कठिनता से रहे। वहाँ उन्होंने रावण की बुरे विचार वाली बहिन सुर्पणखा के रूप को विकृत कराया, उसके खर, दूषण और त्रिशिरा आदि भाइयों को मारा तथा अकेले ही चौदह सहस्र राक्षसों को मारा।"

सौदाससुत अश्मक

(६४६)

तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाप्रजाः।
वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥
सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत।
जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥*

(श्री भा० ९ स्क० ९ अ० ३८,३९ श्लोक)

छप्पय

बोले नृप सौदास—प्रभो! अब रक्षा कीजै।
चलै जासु मनु वंश पुत्र इक गुरुवर कीजै ॥
कीयो गर्भाधान भई अति हर्षित रानी।
नष्ट वंश नहिं होय बात जिह सबने जानी ॥
सात बरष तक उदरतें, नहीं पुत्र पैदा भयो ॥
मदयन्ती अति दुखित ह्वै, वचन पुरोहिततें कह्यो ॥

दोष भावना से होता है, भाव शुद्धि होने पर शुद्ध भावना

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! ब्राह्मणी के शाप के अनन्तर महाराज सौदास ने स्त्री सुख का परित्याग कर दिया। इस प्रकार अपने ही किये कर्म द्वारा सन्तान हीन हो गये। राजा की अनुमति से वशिष्ठ जी ने गर्भ स्थापित किया। उस गर्भ को रानी सात वर्षों तक धारण करे रही। किन्तु बच्चा नहीं हुआ। तदनन्तर वशिष्ठ ने पाषाण के आघात द्वारा बच्चे को पैदा किया। इसलिये उनका नाम अश्मक हुआ।"

के सौंदर्यको देखकर अचर प्राणी सचर से होकर रोमाञ्चित हो जाते, अश्रु बहाने लगते और सचर प्राणी अचर से होकर स्तब्ध हो जाते। पशु-पक्षी भी उस सौंदर्य पर रीझ गये। यहाँ तक कि मनुष्यों को खाने वाले राक्षसों ने भी इस सौंदर्य के सम्मुख मस्तक नवा दिया और स्पष्ट कह दिया—"यद्यपि ये हमारे शत्रु हैं, भक्ष्य हैं, फिर भी ये इतने सुन्दर हैं, कि मारने को चित्त नहीं चाहता।" ये उन शुष्कहृदय वाले कठोर राक्षस पुरुषों के विचार हैं। स्त्रियाँ सौन्दर्य को देखकर पिघल जाती हैं। कुछ पतिपरायण-आदर्श सतियों को छोड़कर स्त्री मात्र सुन्दर सुवेष पुरुष को देखकर अपने आपेको खो बैठती हैं, फिर चाहे वह सुन्दर पुरुष कोई भी क्यों न हो। विधाता ने स्त्रियों में पुरुषों के सौंदर्य के प्रति, पुरुषों में स्त्रियों के सौंदर्य के प्रति आकृष्ट होने का दोष अथवा गुण स्वाभाविक भर दिया है, उसे कोई मेंट नहीं सकता अन्यथा नहीं कर सकता। इससे बचना नर का काम नहीं है केवल नारायण ऋषिको छोड़कर। भगवान् अपने राम रूप में इतने सुन्दर थे, कि लाखों वर्षों तक निराहार रहकर घोर तपस्या करने वाले शुष्क मुनि भी उनके रूप पर मोहित हो गये, उन्होंने भी इच्छाकी राम का कसकर आलिंगन करें, इन्हें बार बार छाती से चिपटावें और अपने तनकी तपन बुझावें। सर्वान्तर्यामी वांछाकल्पतरु रघुनन्दन मुनियों के भाव को समझ गये और बोले—"मुनियो! पुरुष-पुरुष आलिंगन करे इसमें पूर्ण रसका संचालन नहीं होता। अब तुम स्त्री बनने के लिये तप करो। इस तपस्या से, यह रूखा हुआ मोटे चर्मवाला शरीर ये रूखी रूखी दाढ़ी जटायें तुम्हें क्या सुख देंगी। तुम सब अबके गोपी बन जाओ, साधु से साध्वी बन जाओ मैं भी राजा के आचार-विचार शिष्टाचार मर्यादा को छोड़कर गोप

मन्त्रियों की सहायता से राज्य की रेख-देख करती थी। अब जब उनके पति विशुद्ध बन गये, तब उन्हें परम हर्ष हुआ। जब वे ऋतु स्नान करके निवृत्ति हुई तब महाराज ने सन्तान की इच्छा से वैदिक विधि पूर्वक उनके गर्भाधान करना चाहा। उस समय पतिव्रता मदयन्ती बड़े स्नेह भरे स्वर मे राजा से बोली—"प्राणनाथ। आप को स्मरण न होगा। आप जब राक्षस भावापन्न थे, तब आपने एक गर्भाधान कराती हुई ब्राह्मण पत्नी के पति को बल पूर्वक उससे पृथक् करके भक्षण कर लिया था। उसने आप को शाप दिया था कि जब तुम गर्भाधान सस्कार करने को उद्यत होंगे, तभी तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।" सो प्राणनाथ। आप उस पतिव्रता के शाप को स्मरण कीजिये। इस समय आप गर्भाधान करेंगे, तो मेरा भी मनोरथ पूर्ण न होगा। आप गर्भाधान भी न कर सकेंगे। यदि आप का कुछ हुआ, तो मै एक क्षण भी आप के बिना जीवित न रह सकूँगी इस लिये आप गर्भाधान का विचार छोड़ दें।"

राजा ने कहा—"प्रिये। तुम सत्य कहती हो। यदि मेरी मृत्यु हो गई, तो यह इक्ष्वाकुवंश सदा के लिये विलुप्त हो जायगा। उस पतिव्रता का शाप अन्यथा तो हो नही सकता। इसलिये आज से मैं प्रतिज्ञा करता हूँ जीवन भर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा। स्त्री सुख से सदा पृथक् रहूँगा, किन्तु फिर वंश परम्परा कैसे चलेगी।"

महारानी ने कहा—"हमारे कुल देव भगवान् वशिष्ठ ही है। आप उनकी शरण में जायें, वे जो करेंगे वह धर्मानुकूल ही करेगे।"

यह सुन कर राजा महर्षि वशिष्ठ के समीप गये और बोले—"ब्रह्मन्! मेरा वंश विच्छेद न हो, ऐसा कोई उपाय करें।

मिला। वह राम लक्ष्मण को दोनों कंधों पर रखकर भागा। वैदेही चिल्लाने लगी, छटपटाने लगी, रोने लगी और राक्षस के हाथ जोड़ने लगी। श्रीराम हँस पड़े। उन्होंने विराध के एक बाहु को काट डाला, लक्ष्मण ने दूसरी को। फिर लात घूँसों से मार कर उसे शाप मुक्त कर दिया। वह पूर्व जन्म में सुप्रसिद्ध तुम्बुरु नामक गन्धर्व था। कुबेर के शाप से वह राक्षस हो गया था। श्रीराम के हाथ से मरने से वह राक्षसी योनि से छूटकर पुनः गन्धर्व हो गया। विराध का उद्धार करके उसी से महामुनि शरभंग का पता पाकर श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित शरभंग मुनि के आश्रम पर आये।

शरभंग मुनि के आश्रम पर श्रीराम ने देवेन्द्र को रथ सहित देखा, किन्तु इन्द्र श्रीराम को देखते ही चले गये। शरभंग महामुनि अपने आराध्य को अतिथि रूप में पाकर परम प्रमुदित हुए। उन्होंने अपने तप की सार्थकता समझी। भगवान् की पूजा सत्कार करके शरभंग महामुनि अग्नि में प्रवेश कर गये, श्रीराम उनके तप की प्रशंसा करते हुए दण्डकारण्य में आगे बढ़े।

श्रीराम का आगमन सुनकर समस्त ऋषि-मुनि राक्षसों के उत्पातों से दुखी होकर श्रीराम की शरण गये। उन ऋषियों को शरणार्थी समझकर भगवान् ने उन्हें अभय दान दिया और पृथ्वी को राक्षस रहित करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। इससे वनवासी तपस्वी, ऋषि मुनि बड़े ही प्रसन्न हुए। इसके अनन्तर श्रीराम अन्य एक तपस्वी मुनि के आश्रम पर गये। यहाँ मुनि के साथ श्रीराम का सुखद सम्वाद हुआ, वहाँ से चलकर भाई और पत्नी के सहित श्रीराघव धर्मभृत मुनि के आश्रम पर गये। इस प्रकार एक के पश्चात् दूसरे और दूसरे के पश्चात् तीसरे मुनि के आश्रम पर रघुनन्दन जाते। कहीं एक दिन निवास करते; कहीं दो दिन;

मे आनन्द मनाया गया। अश्मक (पत्थर) से आघात करने के कारण उनकी उत्पत्ति हुई अतः मुनि ने उसका नाम अश्मक रखा।

कुमार अश्मक अपने पिता के समान ही सुन्दर और गुणी थे। शनैः शनैः वे बड़े हुए। युवा होने पर महाराज सौदास ने उनका विवाह कर दिया। अन्त में उन्हें राज पाट सौंप कर वे महारानी मदयन्ती के साथ वन में चले गये और वहाँ तपस्या करके स्वर्गगामी हुए।

श्री शुक कहते है—"राजन् ! पिता के वन चले जाने के अनन्तर अश्मक धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। इनके एक पुत्र हुआ जो क्षत्रिय कुल का मूल होने से मूलक कहलाया।"

इस पर महाराज परीक्षित् ने पूछा—"क्षत्रिय कुल के मूल तो महाराज मनु हैं, ये अश्मक पुत्र मूलक क्षत्रिय कुल के मूलक क्यों कहाये। हमारी इस शङ्का का समाधान कीजिये।"

श्री शुक बोले—"अच्छी बात है सुनिये राजन् ! मैं इसका कारण बताता हूँ, आप समाहित चित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

भगवन् ! का भरि दयो उदरमहँ जो नहिँ निकसत।
अटक्यो एकहि ठौर तनिक तहँ तैं नहिँ खिसकत॥
मुनि हँसि लियो अश्म मन्त्र पढ़ि उदर छुवायो।
मदयन्ती ने तुरत सुघर सुत श्रम बिनु जायो॥
प्रमुदित सबही जन भये, राजा रानी पुरोहित।
तेई अश्मक नामतें, भये भूप जग महँ विदित॥

आपके मुझे दर्शन हो गये। राघव! मैं चिरकाल से आपके दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहा था, कि आप कब कृपा करते हैं, कब अपने दर्शनों से मेरे आश्रम को परम पावन बनाते हैं। मुझमें तो इतनी शक्ति नहीं, सामर्थ्य नहीं जो अपने पुरुषार्थ के सहारे आपके दर्शन कर सकूँ। आप ही जब कृपा करो, आप ही जब देना चाहो तभी दर्शन हो सकते हैं।"

श्रीराम ने अत्यन्त ही नम्रता के साथ कहा—"भगवान् के दर्शनों की मुझे भी बड़ी उत्कट अभिलाषा थी। अब मेरी इच्छा है वनवास की शेष अवधि भगवान् के चरणों में ही व्यतीत करूँ। अतः अब मुझे आप अपने चरणों के ही सान्निध्य में रखें।"

अगस्त्य मुनि ने कहा—"श्रीराम! यह आश्रम तुम्हारा ही है। इसमें सुख पूर्वक निवास करो।" यह कहकर मुनि ने श्रीराम को विधिपूर्वक अर्घ्य दिया खाने को कन्द मूल फल दिये और सीता को श्रमित देखकर रहने को एक पर्णकुटी दी, जिसके आस-पास सुगन्धित पुष्प लगे हुए थे। श्रीराम मुनि के सुन्दर स्वच्छ फल पुष्पों के वृक्षों से युक्त उस अनुपम आश्रम को देखकर परम प्रसन्न हुए और वह रात्रि उन्होंने सुखपूर्वक वहाँ बिताई।

दूसरे दिन मुनि ने कई दिव्य अस्त्र श्रीराम को दिये, जो कभी भी व्यर्थ होने वाले नहीं थे, जिससे राक्षसों का वध किया जा सकता था। मुनि की प्रसन्नता के लिये उनका गौरव बढ़ाने के निमित्त वे सब अस्त्र श्रीराम ने सादर ग्रहण किये। अस्त्र आदि ग्रहण करके श्रीराम ने कहा—"भगवन्! मैं चाहता यह हूँ, कि आप अपने समीप ही कुछ दूरी पर पृथक् मुझे ऐसा स्थान बतावें जिसमें मैं सुखपूर्वक स्वतन्त्रता से रह सकूँ। आप सब अहिंसा व्रतधारी ब्राह्मण हैं। मैं ठहरा अस्त्र शस्त्रधारी क्षत्रिय। मैं दुष्टों

स्वभावतः शुद्ध कार्य होते है और अशुद्ध भाव होने से अशुद्ध कार्य होते है। सात्विक भावों का जब प्रावल्य होता है तब सात्विक कार्य होते है, तमोगुण की प्रबलता में तामसी कार्य इसीलिये मुनियों ने भाव शुद्धि पर अत्यधिक बल दिया है। अन्य शरीरों में अन्य जाति के प्राणियों का आवेश हो जाता है। मनुष्य के शरीर मे भूत, प्रेत, पिशाच, बैताल, ब्रह्मराक्षस आदि घुस जाते है, तब उसका शरीर तो वैसा ही रहता है, चेष्टा सब उन आवेश वाले प्राणियों की सी हो जाती है। जिसने जीवन में कभी सुरापान न किया हो, यदि उसके शरीर में कोई सुरापी जीव घुस जाता है, तो वह यथेष्ट सुरापान कर लेता है। उस समय वह जो कार्य करता है, स्वयं नहीं करता। उसके शरीर मे जिसका आवेश होता है, वही सब करता है।

श्रीशुकदेव जी कहते हैं—"राजन्! वसिष्ठजी के शाप से महाराज सौदास के शरीर में राक्षस घुस गया। अब वे सभी चेष्टायें राक्षसों की सी करने लगे। जगलों में घूमने लगे। जहाँ भी किसी पुरुष को देखते, वही उसे पकड़कर खाजाते। एक दिन राजा राक्षसभावापन्न होकर भूखे इधर-उधर आहार की खोज में रात्रि के समय घूम रहे थे उसी समय उन्होंने देखा एक ऋषि अपनी पत्नी में गर्भाधान संस्कार कर रहे है। संतति की कामना से द्विज पत्नी अपने पति के साथ सहवास कर रही है। महाराज की ऐसी चेष्टा देखकर द्विज पत्नी डर गई। राजा ने बल पूर्वक जाकर मुनि को पकड़ लिया। अभी तक मुनि पत्नी का मनोरथ पूर्ण नही हुआ था, उस समय में राक्षस के प्रहार करने से पत्नी पति दोनो को मर्मान्तिक क्लेश हुआ। राजाने बल पूर्वक पति पत्नी को एक दूसरे से पृथक कर दिया और उनमें से पुरुष को पकड़ लिया स्त्री को, छोड़ दिया। राक्षस भी सहसा स्त्री पर

की ओर के विद्युज्जिह्व भी, रावण से लड़ने आया था। उसने अपना जिह्वा से रावण की पीठ को चाटना प्रारम्भ कर दिया। पहले तो रावण को कुछ भान ही न हुआ, जब उसमें कष्ट होने लगा तो खड्ग से उसकी जिह्वा काट ली और उसे मार डाला। दानवों को जीतकर वह लंकापुरी आया। तब रोती चिल्लाती विलाप करती सूर्पणखा उसके समीप आई और बोली—"तू मेरा बड़ा भाई है, फिर भी तैंने मुझे विधवा बना दिया। जान बूझकर मेरे पति को युद्ध में मार डाला, अब मैं कैसे अपने दिन बिताऊँ ?"

रावण ने अपनी छोटी बहिन को पुचकारा और कहा—"बहिन! युद्ध में मैं उन्मत्त हो गया था। मुझे अपने पराये का ध्यान ही नहीं रहा। तेरा पति भूल से मेरे हाथ से मारा गया। अब जो हो गया सो हो गया। मरा हुआ व्यक्ति लौट तो सकता नहीं। अब तू मान सम्मान के साथ यहीं मेरे समीप रहे। ये तेरी बुआ के लड़के खर चौदह सहस्र राक्षसी सेना सहित तेरी रक्षा के लिए जन स्थान में रहेंगे। वहाँ ये अपना एक राज्य स्थापित करेंगे, किन्तु रहेंगे मेरे अधीन ही। दूषण, त्रिशिरा इसके सहायक होंगे। तू इनके संरक्षण में सुख पूर्वक अपने वैधव्य के जीवन को व्यतीत करे।"

अगस्त्य मुनि श्रीरामचन्द्र से कह रहे हैं—"सो राघव! तब से १४ सहस्र राक्षसों के सहित खर इस दंडकारण्य के जन स्थान नामक भाग में रहता है। राघवेन्द्र! राक्षस बड़ा उपद्रव करते हैं। वे मुनियों को बहुत कष्ट देते हैं। जो मुनि अशुचि रहते हैं, उन्हें खा जाते हैं। आप वहाँ रहेंगे तो यह स्थान मुनियों के लिये निरापद हो जायगा। वह स्थान पास ही है। वह बड़ा रमणीक स्थान है। पुण्यतोया गोदावरी वहाँ बहती

पुण्यश्लोक राजर्षि सौदास हैं। आपके द्वारा यह क्रूर कर्म कभी भी न होना चाहिये। आपका साधु समाज में सर्वत्र सम्मान है। आप तो दीनों पर सदा दया करते रहते हैं, फिर गौ और ब्राह्मणों के तो आप भक्त हैं। ये वेदवादी धर्मज्ञ श्रोतिय ब्राह्मण है। आप इन्हें क्यों खा जाना चाहते है ? यदि आपने इन्हें खाने का निश्चय कर लिया है, तो पहिले मुझे खा लीजिये। इनके विना मै एक क्षण भी जीवित नही रह सकती।"

श्री शुकदेवजी कहते है-"राजन् ! इस प्रकार वह विप्र पत्नी विविध भाँति से विलाप करती रही, अनेक प्रकार से राजा को समझाती रही, किन्तु महाराज सौदास तो शाप से विमोहित थे, उन्होने ब्राह्मणी की एक बात भी न सुनी। वे उसके पति को खा गये। यह देखकर मुनिपत्नी को बड़ा दु.ख हुआ। उसने राजा को शाप देते हुए क्रोध में भरकर कहा-'अरे पापी ! अरे क्रूर ! तैंने मुझ अबला पर तनिक भी दया न की। मैं सतान की इच्छा से पति का सहवास कर रही थी, तैंने बलात् मेरे पति से मुझे पृथक् कर दिया। मेरी इच्छा पूरी न होने दी, अत: मैं तुझे शाप देती हूँ, कि तू भी जब स्त्री समागम करेगा, तब तेरी भी इसी प्रकार मृत्यु हो जायगी, तू सन्तानोत्पत्ति करने में कभी समर्थ न हो सकेगा।"

महाराज तो शाप विमोहित थे, उन्होने ब्राह्मणी के शाप पर कुछ भी ध्यान नही दिया। वे ब्राह्मण को खा कर चले गये। वह पति परायण विप्र पत्नी अपने पति की अस्थियों को लेकर चिता चुनकर सती हो गई। वह परलोक में जाकर अपने पति के साथ मिल गई। इस प्रकार राक्षस भावापन्न राजा को मुनि पत्नी का अनपत्य होने का शाप हुआ था।

शोभा को देखकर विमुग्ध हो गये। प्रसन्नता प्रकट करते हुए लक्ष्मण से बोले—"लक्ष्मण! मुनि ने जैसा बताया वैसा ही सुन्दर यह स्थान है। यहाँ जल का भी सुपास है, ईंधन भी यथेष्ट है कन्दमूल फलों का भी बाहुल्य है। यहाँ हरिन भी बहुत हैं। सुन्दर बोली बोलने वाले पक्षियों के झुंड भी इन वृक्षों के आश्रय में रहते हैं। यहीं तुम कोई सुन्दर सा स्थान देखकर अपनी इच्छानुसार कुटिया बनाओ।"

यह सुनते ही लक्ष्मण तो विह्वल हो गये, उनकी आँखों में आँसू भर आये और रोते हुए श्रीराम के चरणों में गिरकर सिसकियाँ भरने लगे और पूछने लगे—राघव! मुझसे ऐसा कौनसा अपराध बन गया है?"

श्रीरामचन्द्र अपने प्रिय भाई लक्ष्मण की इस विकलता का कुछ भी कारण न समझे। वे बड़े स्नेह से बोले—लक्ष्मण! भैया! मैंने तो कोई ऐसी बात कही नहीं। तुमसे भूल में भी मेरा कोई अपराध नहीं बना। तुम इतने विकल क्यों हो रहे हो?"

रोते रोते लक्ष्मणबोले—"राघव! मेरी अपनी इच्छा कहाँ है, मैंने तो अपनी इच्छा आपकी इच्छामें मिला दी है, उसमें घोलकर एक कर दी है। फिर मैं अपनी इच्छा से कुटी कैसे बना सकता हूँ। मुझे आप आज्ञा करें, वहीं मैं कुटी बनाऊँ। मेरी अपनी तो कोई इच्छा ही नहीं। मैं तो दास हूँ, आज्ञा का पालक हूँ। आप जहाँ आज्ञा करें वहीं मैं कार्यारम्भ करूँ।"

श्रीराम को अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने बड़े स्नेह से लक्ष्मण के कन्धे पर हाथ रखा और उन्हें एक समतल भूमि के समीप ले गये और बोले—"भैया! यहाँ उत्तम रहेगा। यहीं बनाओ।"

गौतम मुनि बोले—"अच्छी बात है, यदि तुम्हारा ऐसा ही आग्रह है, तो मुझे तो कुछ इच्छा है नही, अपनी गुरु माता के पास जाओ, वह जो वस्तु लाने को कहे. वह उसे लाकर दे दो"

यह सुनकर उत्तङ्क अपनी गुरु माता अहल्या के निकट गये और बोले—"माता जी! अब मै विद्या समाप्त करके जा रहा हूँ, मैं कुछ गुरु दक्षिणा देना चाहता हूँ, गुरु जी ने मुझे आपके पास भेजा है, आपकी जो भी इच्छा हो, उसे मै पूर्ण करूँ।"

सूतजी शौनकादि मुनियों से कह रहे है—"ऋषियो! स्त्रियों से कोई मन की बात पूछे, तो वे कोई न कोई आभूपण की ही इच्छा करेंगी। विवाह में-त्योहार पर्व में-जायँगी, तो सबसे पहिले उनकी दृष्टि आभूषणों पर ही पड़ेगी, किसके कर्णफूल सुन्दर हैं, किसका हार चमकीला है, किसका कौन सा आभूपण कैसा है, किसकी अँगूठी में फँसा नग है, जो वस्तु उनके मन पर चढ़ जायगी, उसे बार-बार देखेंगी उसका मूल्य, मिलने का पता पूछेगी और अवसर पड़ने पर उसके लिये पति से आग्रह करेंगी। चाहे आभूपण पेटी में ही बन्द रहें कभी भी न पहिने, किन्तु आग्रह अवश्य करेंगी। गौतम पत्नी अहल्या कभी यज्ञ में अपने पति के साथ अयोध्या गई होंगी। वहाँ महलों मे उन्होंने कभी सौदास की पतिव्रता पत्नी मदयन्ती को दिव्य कुण्डल पहिने देखा होगा। वे कुंडल उसके मन पर चढ़ गये होगे। पति से तो कैसे कहती। जब शिष्य ने आकर पूछा—"तब बड़े स्नेह से बोली—"बेटा? यदि तुम मेरी इच्छा पूरी करना चाहते हो, तो मेरी एक इच्छा है,उसे यदि पूरी कर सको तो मैं परम प्रसन्न होऊँगी।"

उत्तङ्क मुनि बोले—'माताजी। आप अपनी इच्छा मुझे बताइये। असम्भव बात भी होगी, तो भी मैं उसे पूर्ण करूँगा।

रहे। लक्ष्मण कभी भी अपने भाई राम से पृथक् न हों।" यह सुनते ही लक्ष्मण ने दौड़कर जानकी के चरण पकड़े। जानकी ने अपने चरणों की ओर नमित उनके सिर को उठाकर उस पर हाथ फेरा।"

इस प्रकार अपने परिश्रम का पूर्ण परितोषिक पाकर लक्ष्मण पुष्प तोड़ लाये। फिर उन्होंने देवताओं के निमित्त से पुष्पों की की बलि दी। तब श्रीराम ने कुटी में प्रवेश किया। जानकी के सहित सुख पूर्वक श्रीराम उसमें निवास करने लगे। लक्ष्मणजी उस आश्रम को सजाने और सुन्दर बनाने के लिये सतत अथक परिश्रम करने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मन बहलाने के लिये एकान्त में वृक्षों से बढ़ कर कोई सुन्दर सरस सुगम साधन नहीं। लोग पुत्रों से प्यार करके उन्हें खिलापिला के उनके साथ हँसी विनोद करके सुख का अनुभव करते हैं। बच्चों के सुख हँसने खेलने में अपूर्व सुख होता ही है, किन्तु वृक्ष पौधों के साथ समय बिताने में जो सुख होता है वह पुत्रों के साथ भी नहीं होता। वे लोग बड़भागी हैं, जिन्हें वृक्षों, लताओं और पौधों के साथ खेलने में आनन्द आता है। बच्चे तो खेलते-खेलते रो पड़ते हैं, कभी ऐसे आचरण कर बैठते हैं, कि उन क्रोध आ जाता है, कभी बीमार पड़ जाते, हैं तो दुःख भी होता है, कुपूत निकल गये तो गाली भी देते हैं, मार देते हैं, किन्तु वृक्षों में यह बात नहीं। वे कभी गाली नहीं देते, कुवाच्य नहीं बोलते। रोते नहीं, सदा हँसते रहते हैं, कोई ध्यान से सुने तो वे बोलते भी हैं बातें भी करते हैं। पानी न पाने से मुरझा जाते हैं, पानी पाते ही तुरन्त हरे हो जाते हैं। समय आते ही खिल जाते हैं, सुगन्ध बखेर देते हैं। फल देते हैं स्वयं उन्हें नहीं खाते पास में रहने वाले अपने

गुरुदक्षिणा के लिये जो प्रयत्न कर रहा हो, इन्हें अवध्य वताया है। अत. आप मुझे मार कर खाने का विचार छोड़ दें।"

राजा सौदास बोले—"ब्रह्मन् ! मैं तो राक्षस हूँ। दिन का छठा भाग बीत चुका, मुझे भूख लग रही है आप दे रहे हैं धर्म की सीख। यह उसी प्रकार की शिक्षा है जैसे प्रज्वलित अग्नि को घृत डालकर शान्त करना। द्विजवर? अवतो मैं आपको बिना खाये छोड नहीं सकता।"

उत्तङ्क मुनि ने कहा—"ब्रह्मन् ! मुझे मरने से तो भय है नही, किन्तु मुझे गुरुदक्षिणा की चिन्ता है। यदि आपने मुझे खाने का ही दृढ़ संकल्प कर लिया है, तो पहिले मुझे मेरी मनमानी वस्तु दे दीजिये। उसे देकर तथा गुरु ऋण से उऋण होकर मै पुन: आपके समीप आ जाऊँगा, तब आप मुझे खालें।"

राजा सौदास बोले—"अजी, महाराज ? मैं कोई बच्चा तो हूँ नही, जो आप मुझे फुसला लें। राक्षस के मुख से निकल कर फिर कौन प्राण गवाँने आता है।"

उत्तङ्क मुनि ने उत्तेजित होकर कहा—"राजन् ! आप मुझे झूठा समझते है ? मैं अवश्य आऊँगा।"

राजा ने कहा—"अच्छी बात है, मांगिये, क्या आपको माँगना है। यदि वह वस्तु मेरे अधीन हुई तो उसके मिलने में आप तनिक भी सन्देह न करें।"

उत्तङ्क मुनि ने कहा—"मुझे अपनी गुरुपत्नी को देने के लिये आपकी पतिव्रता पत्नी के कानों के दिव्य कुण्डल चाहिये।"

राजा ने कहा—"वह तो मेरी रानी के पास है, उससे जाकर आप माँगे।"

का प्रसन्नता होती। वे सीताजी के गले में गलबैयाँ डालकर इधर से उधर लक्ष्मण की लगाई वाटिका में परिभ्रमण करते। जानकी

का सब इ गुण समझाते। छोटे-छोटे हरिनों के बच्चों को पकड़ लाते। जानकी उन्हें पालतीं नीवार खिलातीं। थपथपातीं और उनके मुख को चूमतीं, वे भी जानकी के पीछे-पीछे वाटिका में

मुनि ने रानी से जाकर ज्यों ही यह बात कही त्यों ही रानी ने अपने कानों में से दिव्यकुंडल उतार कर मुनि को दे दिये और कह दिया—"ब्रह्मन् ! ऐसे दिव्य कुण्डल तीनों लोकों में भी कहीं नहीं है। इन्हें आप पृथिवी पर भूल कर भी न रखना नहीं तो कोई नाग, देव, दानव इन्हें तुरन्त उठा ले जायगा।"

रानी की यह बात सुन कर उसे आशीर्वाद देकर मृग चर्म में कुंडलों को लपेट कर मुनि उत्तंक चल दिये। वे एक बार राजा के पास मित्र भाव से फिर आये और बोले—"राजन् ! आप का कल्याण हो, आप ने जो रानी को संकेत वचन कहा था, उसका अभिप्राय क्या है ?"

राजा बोले—"ब्रह्मन् ! जीवन भर मैंने ब्राह्मणों की सेवा की इसका फल यह हुआ, कि मुझे राक्षसी योनि प्राप्त हुई। फिर भी जैसे अबोध बालक को माँ के अतिरिक्त कोई गति नही, वैसे ही ब्राह्मणों के अतिरिक्त मेरी भी कोई गति नही। इसीलिये मैंने आप को राक्षस भाव में भी मुहमांगा दान दिया। अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। अब तुम्हें देखना है कि तुम कुंडल देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हो या नही। लौट कर मेरा आहार बनते हो या नहीं।"

यह सुन कर उत्तंग मुनि बोले—"राजन् ! मैं आप से मित्र भाव से एक प्रश्न पूछता हूँ, उसका उत्तर आप मैत्री धर्म समझ कर दें। क्योंकि सज्जन पुरुष जिससे वार्तालाप कर लेते हैं, वे उनके मित्र बन जाते हैं। अतः आप मेरे मित्र हुए। राक्षस भाव से नहीं मित्रभाव से आप मेरी बात का उत्तर दें।"

राजा ने कहा—"अच्छी बात है, पूछिये ! मैं मित्रभाव से ही यथार्थ उत्तर दूँगा।"

है उसी तरह अरण्य में अपने जीवन के साथ जानकी का अंग-अंग खिल जाता। वे आनन्दातिरेक में अपने आपको भूल जातीं।

एक दिन की बात है, कि अपनी प्रियतमा से सटे हुए—उसके अंगों में अपने अंगों को सटाये हुए श्रीराघव सुखपूर्वक पुष्पवाटिका की वेदी पर बैठे हुए थे। दूर पर लक्ष्मणजी कुदाल से भूमि को खोद रहे थे। आज उन्हें एक नई धुन सवार हुई। कहीं वे छोटे से नीबू के वृक्ष को फला फूला देख आये थे। उसके फल देखने में बड़े ही सुन्दर लगते थे। उन्होंने सोचा—आज एक बड़ा सा गड्ढा खोदकर फलों सहित उस वृक्षको रात्रि में लगा दूँगा। प्रातः उठते ही फलों फूलों से लदे उस वृक्ष को देखकर जानकी चकित रह जायेंगी और परम विस्मय के साथ श्रीराघव से पूछेंगी—"प्राणनाथ! रात्रि ही रात्रि में इस वृक्ष में फल-फूल कैसे लग गये। वे फले वृक्ष को देखकर कितनी प्रसन्न होंगी। जब राघव कहेंगे यह लक्ष्मण का पुरुषार्थ है, तो जगदम्बा मेरे सिरको सूँघेंगी, मैं निहाल हो जाऊँगा उनकेचरण जल को सिर पर चढ़ाऊँगा। इन्हीं विचारों में वे वे गड्ढा खोदते-खोदते अपने आपको भूल रहे थे। उनके सम्पूर्ण शरीर से पसीना चू रहा था। उन्हें पता भी नहीं था श्रीराम वैदेही को लेकर गोदावरी तट पर गये हैं या कुटी में ही बैठे हैं।

उसी समय रावण की छोटी विधवा बहिन स्वेच्छाचारिणी अकेली ही घूमती उधर आ निकली। पंचवटी के समीप ऐसे सुन्दर सजे हुए आश्रम को देखकर उसे कुतूहल हुआ कि यह नया आश्रम किस ऋषि ने बना लिया। अपने कुतूहल को शान्त करने के लिये तथा आश्रम की सुन्दरता को देखने के लिये यह आश्रम की ओर शीघ्रता से आई। दूर से ही उसने सीता के

का शाप हो गया, तो उनका आगे का वंश कैसे चला, इसे कृपा कर हमें सुनाइये।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है. मुनियो ! अब मैं आप को सौदास अश्मक का वृत्तान्त सुनाता हूँ। आप इसे श्रद्धा सहित सुनें।"

(छप्पय)

बीते बारह बरस शाप उद्धार भयो जब।
करिबे गर्भाधान भये उद्यत भूपति तब॥
बरजे रानी नृपति शापकी याद दिलाई।
महिषी संतति बिना बहुत रोई घबराई॥
वंशनाशको भय समुझि, लख्यो न अन्य उपाय जब।
गुरु वशिष्ठतें विनय करि, भूप प्रार्थना करी तब॥

तन्मय है। यदि मैं इस स्त्री से भी सुन्दरी स्त्री बन जाऊँ तो निश्चय है यह इसे छोड़कर मुझे अपना लेगा वरण कर लेगा।

इस विचार के आते ही उसे बड़ा हर्ष हुआ। उसने समझा मार ली बाजी। अब तो यह मेरा हो चुका।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भाग्य इसका नाम है। काम भाव में फँसे राक्षसी का मन भाग्यवश भगवान् में अनुरक्त हो गया यद्यपि वह जानती नहीं थी ये साक्षात् परब्रह्म परमात्मा सनातन सच्चिदानन्द आनन्दघन श्रीराम हैं, किन्तु इससे क्या हुआ? बिना जाने भी अमृत को पी लो, तो अमर तो हो ही जाओगे, बिना जाने भी अग्नि को छू लो, तो जल तो जाओगे ही। प्रेमास्पद में किसी भी प्रकार प्रेम हो गया। उसे रिझाने की बात मन में आ गई, तो बेड़ा पार हो गया। आज नहीं कल, कल नहीं परसों। प्यारे तो मिलेंगे ही, उनके बाहुपाश में तो फँसना पड़ेगा। जिसका जिस पर सत्य स्नेह होता है वह उसे निस्सन्देह मिल जाता है। धैर्य चाहिये। कामिनी सूर्पणखा ने अपनी बुद्धि से अत्यन्त सुन्दर स्त्री का रूप रख लिया और छम्म-छम्म करती हुई मन ही मन मुस्कराती हुई श्रीराम के सम्मुख खड़ी हुई।

दूर से ही कड़े छड़े नूपुर और चूड़ियों की खनखनाहट और झनझनाहट सुनकर सीता जी चौंक पड़ीं। अपने पति से सटी हुई उनके अंगों में अंगों को मिलाये जो बैठी थीं किसी अपरिचित स्त्री को आते देखकर शीघ्रता से पृथक् हो गईं। उन्होंने अपने वस्त्रों को सम्हाला और वे चकित चकित नेत्रों से उस कामरूपिणी अबला को शंका की दृष्टि से निहारने लगीं।

दिखाई देने वाला कार्य अधर्म माना जाता है। जो सर्वज्ञ हैं वे ही धर्म के मर्म को भली भाँति जान सकते है।

श्रीशुकदेजी कहते हैं—"राजन्! महाराज अश्मक के पुत्र मनुकुल के मूलक क्यों हुए इस प्रसङ्ग को मैं आपको सुनाता हूँ। महाराज अश्मक ने बहुत दिनों तक पृथिवी का पालन किया। बहुत से यज्ञ याग किये और अन्त में अपने पुत्र मूलक को राजपाट सौपकर वन में तपस्या करने चले गये।

जिन दिनों महाराज मूलक पृथिवी का राज्य करते थे, उन्ही दिनों जमदग्नि के सुत भगवान् के अंशावतार श्रीपरशुरामजी का प्राकट्य हुआ। उनके पिता को हैहय कुल के क्षत्रियों ने मार डाला था, अतः महर्षि परशुराम ने हाथ मे फरसा लेकर प्रतिज्ञा की थी कि मैं 'पृथिवी पर एक भी क्षत्रिय को न छोड़ूँगा।' ऐसी प्रतिज्ञा करके उन्होने क्षत्रिय कुल का संहार करना आरम्भ कर दिया। जहाँ भी बूढ़े, बच्चे, युवक क्षत्रिय को देखते वहीं वे उसका संहार कर देते। इस प्रकार क्षत्रियो का संहार करते करते वे अयोध्या पुरी में भी आये।

महाराज मूलक ने जब सुना कि क्षत्रिय कुल नाशक महर्षि परशुराम आरहे है, तो उन्होंने सोचा—"वे तो भगवान् के अंशावतार है, उनसे मैं युद्ध में तो किसी प्रकार जीत नहीं सकता अतः वे महल में जाकर रानियों में छिप गये। रानियो ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया और चूड़ियाँ पहिना दीं। महाराज परशुराम जी आये उन्होंने चारो ओर राजा को खोजा, राजा का कही पता ही न लगा। अन्तःपुर में उन्होने देखा तो सब रानी ही रानी बैठी है, स्त्रियाँ तो सदा अवध्या बताई है, अतः महर्षि देख भाल कर लौट आये। उन्होंने समझा राजा भाग गया।

श्रीजानकी भी हँस पड़ीं। अपनी हँसी को रोककर बनावटी क्रोध के भाव से वे श्रीराम की ओर कड़ी दृष्टि से देखने लगीं। वे नेत्रों में ही कह रही थीं तुम इस कुलटा स्त्री से क्यों व्यर्थ की बातें कर रहे हो।" एकान्त में यदि कोई स्त्री ऐसी बात कहती तो श्रीराम उससे बात करना तो पृथक् रहा उसकी ओर देखते भी नहीं, किन्तु जानकी के समीप रहने से केवल उनके मनोरंजन के लिये श्रीराम उससे गम्भीर होकर बोले—"अब मैं क्या बताऊँ, तुम हो बड़ी सुन्दरी, किन्तु जिसका एक बार हाथ पकड़ लिया है उसे कैसे छोड़ूँ? जिसके साथ तुमने विवाह किया हो, वह यदि तुम्हें छोड़ना चाहे, तो तुम इसे अच्छा न समझोगी। यही बात मेरे लिये सोच लो।"

यह सुनकर सूर्पणखा बोली—"अजी नहीं, प्रेम में कोई नियम नहीं होता। देखो, मैं तुमसे कितना प्रेम करती हूँ, मैं इस कुरूपा बुढ़िया से सुन्दरी भी अधिक हूँ, तुम मुझे अपनी दुलहिन बना लो। जैसे अद्वितीय सुन्दर तुम हो, वैसे ही अद्वितीया सुन्दरी मैं हूँ। क्यों हूँ न?"

श्रीराम बोले—"भला इसमें भी कुछ पूछना है? वैसे कुछ संदेह भी हो सकता था, किन्तु तुम तो स्वयं ही अपने मुख से अपने रूप सौन्दर्यका वर्णन कर रही हो, किन्तु करूँ क्या मैं एक विशेष नियम में हूँ। इसलिए एक ही पत्नी रख सकता हूँ।"

उस काम रूपिणी मानुषी स्त्री बनी राक्षसी ने कहा—"अरे, तुम कैसे पुराने विचार के दकियानूसी आदमी हो। मैंने तुमसे पहिले ही कह दिया प्रेम में नेम नहीं चलता। कैसे नेम फेम, ये सब तो बाबाजियों और स्वार्थी ब्राह्मणों के पेट भरने के जाल हैं। ऐसा सुन्दर शरीर पाकर भी व्रत उपवास, नियम अनुष्ठान मूर्ख लोग करते हैं। विषय भोगों के रहते हुए भी उनका त्याग

बात यह थी, कि दैत्यों ने देवताओं पर चढ़ाई कर दी। देवता बहुत दिनों तक लड़ते रहे किन्तु वे दैत्यों को पराजित न कर सके। जब वे सब प्रकार से थक गये, तब वे पृथिवी पर आये। उन दिनों महाराज खट्वाङ्ग इस सम्पूर्ण भूमंडल का शासन करते थे। वे पराक्रम में इन्द्र के समान थे। देवताओं ने प्रार्थना की–"राजन् ! आप हमारी ओर से चलकर असुरों से युद्ध करें।' देवतओं की प्रार्थना से महाराज अपने दिव्य रथ पर चढ़ कर स्वर्ग गये और उन्होंने युद्ध में असुरों का संहार किया। देवताओं की विजय हुई।"

विजय के अनन्तर देवताओं ने कहा–"राजन् ! आपने बड़ा श्रम किया, आप मुक्ति को छोड़ कर हमसे और जो भी चाहें वरदान माँग लें, क्योंकि मुक्ति के दाता तो मधुसूदन ही है।"

राजा ने कहा–"देवताओ ! मैं सर्वप्रथम यह जानना चाहता हूँ, कि मेरी अब आयु कितनी और शेष है ?"

देवताओ ने कहा—"अजी, राजन् ! आयु की क्या पूछते है, आपकी आयु तो अब केवल मुहूर्त भर और शेष है।"

यह सुन शीघ्रता के साथ राजा बोले—"तो अब रहने दीजिये मुझे कुछ भी वर न चाहिये अब तो मैं इस एक मुहूर्त का सदुपयोग करना चाहता हूँ. इस एक मुहुर्त में ही मन माधव के पाद पद्मों में लगाकर परम गति प्राप्त करना चाहता हूँ। मुझे मेरे नगर मे ब्राह्मणों के बीच में जाने दीजिये। यद्यपि आप सब सत्व प्रधान है, किन्तु स्वर्ग के दिव्य विषय भोगों में आसक्त होने के कारण अपने अन्तः करण में स्थित परम प्रिय सनातन आत्मा श्री हरि को नहीं जान पाते।"

ऐसा कह कर महाराज तुरन्त स्वर्ग से अवनि पर आये, मन को श्रीहरि के चरणों में लगाकर उन्होंने मर्मान्तिक वाणी में यह

भी हँसी करने लग गये। सीताजी सब समझ रही थीं कि भगवान इस स्त्री से हँसी विनोद कर रहे हैं, इसीलिये वे रहस्यमयी दृष्टि से प्रणयकोप की मुद्रा दिखाती हुई बीच-बीच में श्री राघव की ओर देख लेतीं, किन्तु कुछ बोलती नहीं थीं। इससे श्रीराम को और भी उत्साह मिलता। उसे और भी बनाने का प्रयत्न करते। जब उसने बार-बार प्रेम और नेह की दुहाई देकर श्रीरामजी से अपनाने की प्रार्थना की, तब श्रीराम ने सोचा—यह लक्ष्मण हमारे हँसी विनोद में कभी सम्मिलित नहीं होता, सदा काम में ही लगा रहता है। कुछ इसका भी तो मनोरंजन होना चाहिये। यह सोचकर बड़ी गम्भीरता से उस राक्षसी से बोले—"हे सुन्दरी! हे चन्द्रमुखी! हे वरोरु! तुम एक काम करो। अब मेरे पास तो जैसी बूढ़ी टेढ़ी यह मेरी दुलहिन है इसका निर्वाह करना ही है। मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ।"

उत्सुकता प्रकट करते हुए राक्षसी ने पूछा—"वह क्या ?"

श्रीराम और गम्भीर होकर बोले—"देखो, मेरा एक छोटा भाई है। वह मुझसे कुछ कम सुन्दर नहीं है। मेरे पास तो एक स्त्री है। तुम उसके पास जाओ। वह यदि तुमसे विवाह कर ले तो उसका भी काम चलेगा, तुम्हारा भी मनोरथ पूर्ण हो जायगा। फिर तुम दोनों देवरानी जिठानी आनन्द से साथ-साथ रहना।"

राक्षसी के मन में यह बात बैठ गई, वह समीप में ही काम करने वाले लक्ष्मण के पास गई। श्रीरामचन्द्रजी उसके जाते ही एक रहस्य भरी दृष्टि जानकी के ऊपर डालकर हँस पड़े। तब जानकीजी ने प्रेमकोप के स्वर में उन्हें ठेलते हुए कहा—"चलो, रहने भी दो, तुम्हें बात बनाना बहुत आता है, अब उस

भली भाँति भगवान् में तन्मय हो जाय तो उसका बेड़ा पार ही समझो। जब महाराज को यह दृश्य प्रपञ्च मिथ्या और स्वप्न वत् प्रतीत होने लगा तब देहादि में आत्मबुद्धि रूप अज्ञान को परित्याग करके अपने आप में ही स्थित हो गये। अर्थात् वे भगवान् वासुदेवमय हो गये जो सत्य स्वरूप परब्रह्म और अति-सूक्ष्म तथा अति स्थूल है जो इस सम्पूर्ण ससार में सर्वत्र व्याप्त हैं।"

श्री शुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! जब महाराज खट्वाङ्ग परम पद को प्राप्त हुए तो उनके पुत्र महाराज दीर्घबाहु राजा हुए। इन दीर्घबाहु का ही दूसरा नाम दिलीप है, इन दिलीप ही के पुत्र राजर्षि रघु हुए। ये इतने प्रतापी हुए कि इक्ष्वाकु वंश इनके अनन्तर रघुवशी कहलाने लगे।"

इस पर महाराज परीक्षित ने कहा—"भगवन्! मुझे महा-राज रघु और उनके वश के मुख्य मुख्य राजाओं का चरित्र सुनाइये।"

यह सुनकर आँखों में आँसू भरकर श्रीशुक बोले—"राजन्! अब मैं तुम्हें रघुवंश चरित्र सुनाता हूँ। आप श्रद्धा से सुनें।"

छप्पय

जानी एक मुहूर्त आयु सब जग बिसरायो।
करिकें ध्यान अखण्ड परम पद नृप ने पायो॥
तिनके पुत्र दिलीप यशस्वी दीर्घबाहु वर।
सन्तति बिनु अति दुखित गये निबसें जहँ गुरुवर॥
महिषी संग सुदक्षिणा, लिये जाय गुरु पद गहे।
आशिष दै निज शिष्यतें, वचन मुदित मन गुरु कहे॥

लक्ष्मण गड्ढा खोदने में तन्मय थे उसी समय छम्म छम्म करती राक्षसी पहुँची। लक्ष्मण के भी अपार अनवद्य सौन्दर्य को देखकर राक्षसी विमुग्ध हो गई। उनकी गोल गोल लम्बी लम्बी भुजाओं तथा विशाल और चौड़ी छाती को देखकर वह उनके समीप जाकर बोली—"राम के भाई लक्ष्मण तुम ही हो ?"

लक्ष्मणजी ने ज्यों ही सिर ऊपर उठाया, तो देखा एक बड़ी सुन्दरी स्त्री खड़ी है। बनावट तो बनावट ही है। लक्ष्मणजी उसे देखते ही समझ गये यह कामचारिणी कुलटा राक्षसी है। बनावटी रूप रखकर किसी बुरे अभिप्राय से आई है। उन्होंने कुदाल रख दिया, सुवर्ण के समान तपे हुए गौरवर्ण के शरीर पर मोतियों की भाँति जो बूँदें झलक रही थीं, टपक रही थीं उन्हें अपने वल्कल वस्त्र से पूछते हुए कहा—"हाँ जी, मेरा ही नाम लक्ष्मण है कहिये क्या आज्ञा है ?" राक्षसी उनकी ऐसी मधुर और आदर से सनी वाणी सुनकर उल्लासके साथ बोली—"देखो जी, तुम्हारे बड़े भाई ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। उन्होंने कहा है तुम मेरे साथ विवाह कर लो। देखो, राम के साथ एक स्त्री है, कितना आनन्द कर रहे हैं। तुम्हारे साथ स्त्री नहीं है, तुम गड्ढा खोद रहे हो, कितना परिश्रम कर रहे हो। जिसके पास स्त्री नहीं उसके सब काम व्यर्थ हैं। पुरुष खान खोदकर हीरा मोती निकालता है किसके लिये ? स्त्री को प्रसन्न करने के लिये। अगाध समुद्र में डुबकी लगाकर मोतियों को निकालता है किसके लिये ? स्त्रीको सजानेके लिये, उसके कंठमें पहिनानेके लिये। बड़े भारी हाथी को मारकर उसके मस्तक से मुक्ता निकालता है, किस लिये ? अपनी प्रियतमा प्राणप्रियाको रिझानेके लिये। सारांश यह है कि मनुष्य जो भी भोजन, शृंगार, परिश्रम, विचार करता है स्त्री के लिये उसे प्रसन्न रखने के लिये करता है। स्त्री भी इसके

जिस कुल के पुरुषों को उन्होंने पिता पितामह प्रपितामह, पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्र आदि कहा है। प्रभु के कौन पिता पितामह, वे तो चराचर जगत् के पिता है, सबके जनक है, किन्तु वे सम्बन्ध स्थापित न करें तो संसार में सरसता कैसे आवे। संसार का अस्तित्व न मानकर एक निर्गुण निराकार ध्यान यह देहवाला प्राणी कैसे कर सकता है। देहधारी देहधारी से ही प्रेम करेगा। प्रेम प्रायः एक योनिवालों में ही होता है, सम्बन्ध प्रायः सब जाति में ही होता है। जब तक भगवान् से सम्बन्ध न होगा—ब्रह्म सम्बन्ध संस्कार की दीक्षा न ली जायगी—तब तक भक्ति का प्राकट्य कैसे हो सकता है। सम्बन्ध तभी संभव है, जब सर्वेश्वर सर्वात्मा हमारे बीच में अवतरित हों। भगवान् का अवतार उसी कुल में होगा, जिसकी वंश परम्परा विशुद्ध हो, जिस वंश के लोग धर्म रक्षा के लिये सदा प्राण देने को उद्यत रहते हों, ऐसा विशुद्ध वंश सूर्यवंश ही है। जो पुण्य श्लोक परम प्रतापी महाराजाधिराज श्री रघु के उत्पन्न होने से रघुवंश कहाया जिसके कारण हमारे जानकी जीवन धन रघुवर, रघुनाथ रघुनन्दन, राघव, रघुकुलतिलक, रघुकुलकेतु, राघवेन्दु आदि कहलाये।

श्रीशुकदेवजी कहते है—"राजन्! पुण्य श्लोक राजर्षि खट्वांग के पुत्र परम यशस्वी दीर्घबाहु हुए जिनका दूसरा नाम दिलीप भी था। महाराज दिलीप का विवाह मगधनन्दिनी सुदक्षिणा देवी के साथ हुआ सुदक्षिणा को पाकर राजा उसी प्रकार प्रमुदित हुए जैसे छोटे यज्ञ में भूरि दक्षिणा पाकर ब्राह्मण प्रमुदित होते हैं। महारानी सुदक्षिणा जितनी ही सुन्दरी सुकुमारी थी उतनी ही साध्वी तथा सरल हृदय थीं। वे अपने पति को प्राणों से भी अधिक

भामिनि ! उन्होंने मुझे मेरी माँ से खरीद लिया है। मैं उनका क्रीतदास हूँ। मैं भागना भी चाहूँ, तो जीवन भर भाग भी नहीं सकता। दास तो मुझे रहना ही पड़ेगा। मेरे साथ विवाह कर तुम्हें भी दासी ही बनना पड़ेगा। सब काम तुम्हें भी करने पड़ेंगे। सेवकों को कभी शारीरिक सुख नहीं होता, दासों की अपनी निजी कोई इच्छा ही नहीं रहती। मेरे साथ विवाह करके तुम्हें बड़ा कष्ट होगा। मैं राम को छोड़कर एक क्षण भी कहीं जा नहीं सकता। तुम जैसी परम सुन्दरी कामिनी स्त्री दासी का काम कर नहीं सकती। अतः तुम मेरे साथ विवाह करने के विचार को तो दो छोड़। श्रीराम सब समर्थ हैं। वे राजाधिराज हैं चक्रवर्ती हैं, वे चाहें तो हजारों विवाह कर सकते हैं। उनके साथ विवाह कर लेने पर मैं तो तुम्हारा वैसे ही सेवक-विना पैसे के दास बन जाऊँगा। जैसे अब जनक नन्दिनी की सेवा करता हूँ वैसे ही तुम्हारी किया करूँगा। तुम्हारे चरणों में प्रणाम किया करूँगा। अतः तुम्हारी जैसी सुन्दरी के योग्य पति तो श्रीराम ही हैं। तुम उनसे आग्रह करो। लोग मन से चाहते तो हैं, ऊपर से झूठ मूठ को सिरहिला हिला कर मना करते रहते हैं, जिससे प्रार्थी का और अनुराग बढ़े। नहीं, भला तुम्हारी जैसी सुन्दरी को कौन पुरुष न चाहेगा ?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! राक्षसी तो राक्षसी ही ठहरी। वह लक्ष्मण की गूढ़ विनोद की बात को न समझ सकी और फिर लौट कर श्रीराम के समीप गई और बोली—"राजकुमार ! तुम मुझे व्यर्थ चक्कर में क्यों डाल रहे हो। तुम मुझे अपना लो लक्ष्मण कहते हैं, तुम सब कर सकते हो।"

श्रीराम ने हँसकर कहा—"सुन्दरि ! मेरा भाई बड़ा बुद्धिमान है। वह मेरी इस स्त्री से बहुत डरता है। यह उससे बहुत काम

नाथ ! मैं भी बहुत दिनों से यही सोच रही थी, किन्तु सङ्कोच-वश कुछ कह न सकी।"

अपनी पत्नी की भी इच्छा समझ कर महाराज ने तुरन्त अपना रथ सगाया और वे रानी के सहित रथ में बैठ कर चलने लगे। उनके चलते ही आगे पीछे रक्षा के लिये विशाल सेना चली राजा ने कहा—"मेरे साथ सेना की आज कोई आवश्यकता नहीं। आज मैं अपने गुरुदेव के आश्रम पर जा रहा हूँ। वहाँ मैं अकेले ही जाऊँगा।"

राजा की आज्ञा पाकर सेवक लौट गये। रानी के साथ हंसते खेलते, उन्हें भाँति-भाँति के वृक्ष, फल, फूलों को दिखाते उनका परिचय कराते हुए राजा वशिष्ठ मुनि के आश्रम पर पहुँचे। रथ की घरघराहट सुन कर छोटे-छोटे मुनि कुमारो ने दौड़ कर रथ को घेर लिया। कोई उछलने लगे, कोई कूकने लगे। मयूर मेघ की गड़-गड़ाहट समझ कर चिल्लाने लगे। आश्रम के मृग चकित दृष्टि से निहारने लगे, वृक्षों पर बैठे पंछी कलरव करने लगे। राजा ने प्रथम उतर कर रानी को उतारा और वे आश्रम की उटजों को निहारते हुए यज्ञ के धूएं को लक्ष करके जा रहे थे, उनके पीछे अपने वस्त्रों को सम्हालती, घूँघट में से एक आँख से निहारती हुई सुदक्षिणा उसी प्रकार चल रही थीं जिस प्रकार सायंकाल मे पुरुष के पीछे पीछे छाया चलती है।

गुरु अग्निहोत्र करके अपने शिष्यों से घिरे यज्ञ वेदी के समीप एक सघन वृक्ष की छाया में बैठे थे। राजा ने अपने बड़े बड़े विशाल हाथों की कोमल गद्दियों से जिनमें धनुष की ठेक पड़ी हुई थी उनसे—मुनि के पैर पकड़े और अपने चमचमाते हुए मणिमय मुकुट की प्रभा को उनके नख की ज्योति में मिला

श्रीराम ने कहा—"प्रिये और करूँ भी क्या ? इसी का नाम तो क्रीड़ा है। आज तुम्हारे साथ रहते बीसों वर्ष हो गये। एकान्त में जो हम बैठकर घुल घुल कर प्रेम की बातें करते रहते हैं, उन सबका क्या अर्थ ? सब व्यर्थ की ही बातें तो होती हैं। किन्तु उनसे मनोरंजन होता है प्रेम की वृद्धि होती है। संसार क्रीड़ा स्थली है, विनोद का स्थान है। आनन्द का आलय है। कुछ धूम-धाम खेल माल होता रहे। इसमें सत्य का आरोप न करना चाहिये। जो कुछ हो रहा है खेल हो रहा है। तुम्हारे साथ हँसी विनोद करता था तब तो तुम बड़ी प्रसन्न होती थीं। अब कह रही हो उस बेचारी को चक्कर में डाले हो। देखना अब क्या होता है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! श्रीराम सीताजी से यह कह ही रहे थे, कि इतने में लक्ष्मण को लिये हुए सूर्पणखा श्रीराम के समीप आई। वह कुछ उदास हो रही थी। उसका उत्साह शिथिल हो गया था। प्रतीत होता है, लक्ष्मण ने उससे कोई कड़ी बात कह दी है, इससे उसके सम्मान को ठेस लगी है, उसके मुख पर प्रतिहिंसा के भावों की स्पष्ट झलक दिखाई देती थी।"

श्रीरामचन्द्रजी हँसकर बोले—"कहो जी ! कुछ काम धाम बना। लक्ष्मण सहमत हुआ या नहीं ?"

क्रोध करके वह राक्षसी बोली—"मैं सब बात समझ गई। जब तक यह मेरी सौत कलमुँही तुम्हारी बगल में बैठी रहेगी तब तक मेरा मनोरथ पूर्ण न होगा। तुम मुझे अबला समझे बैठे हो ? अच्छी बात है देखो मेरे बल को, अभी मैं इस कुरूप स्त्री को तुम्हारे सामने कच्ची ही चबा जाऊँगी। यदि फिर भी तुमने मुझे न अपनाया, तो मैं अपनी सेना के बल से तुम्हे पकड़

उधर ही उसके पीछे-पीछे वे जाते। जहाँ खड़ी हो जाती, खड़े हो जाते। बैठ जाती तो स्वयं भी बैठकर उसे खुजाने लगते। हरी-हरी कोमल दूब उसे उखाड़-उखाड़ कर खिलाते। जब वह चर कर सायंकाल को आश्रम को लौटती तो उसके साथ-साथ लौट आते। वे एक वस्त्र से उसके मक्खी मच्छरों को उड़ाते रहते।

एक दिन नन्दिनी चरती हुई एक गहरी गुफा में चली गई वहाँ एक सिंह ने उसे पकड़ लिया। राजा ने धनुष पर बाण चलाया, किन्तु सब व्यर्थ। राजा का हाथ स्तम्भित हो गया। सिंह ने हँसते हुए राजा को मानवीय भाषा में अपना परिचय दिया कि मैं गौरीजी का मानसपुत्र हूँ, उनके वृक्ष की रक्षा के लिये यहाँ नियुक्त हूँ, जो यहाँ आ जाता है मेरा आहार हो जाता है, अब मैं इस गौ को छोड़ूँगा नहीं।" राजा ने सिंह की बहुत अनुनय विनय की, किन्तु वह माना नहीं। तब राजा ने कहा—"अच्छी बात है, तुम गौ को छोड़ दो, मुझे खा लो।" सिंह ने इस बात को स्वीकार किया। महाराज ज्यों ही सिंह के सम्मुख लेटे त्यों ही नन्दिनी हँस पड़ी। वहाँ न सिंह था न गुफा। नन्दिनी सुख से अरण्य में खड़ी थी। राजा को जब आश्चर्य चकित देखा, तब नन्दिनी बोली—"राजन्! आज आप शापमुक्त हुए। एक बार आप स्वर्ग से अपनी राजधानी को आ रहे थे। मेरी माँ कामधेनु कल्पवृक्ष के नीचे बैठी जुगार कर रही थी, तुम्हें अपनी पत्नी के ऋतुकाल की चिन्ता थी। सुदक्षिणा का ऋतुस्नान व्यर्थ न हो यही आप सोचते जाते थे। मेरी माँ को आपने न तो प्रदक्षिणा की न उन्हें प्रणाम किया। इसीलिये उन्होने तुम्हें शाप दिया था, कि जब तक मेरे वंश की सेवा न करोगे तब तक तुम्हारे कोई सन्तान न होगी

सूर्पणखा मुट्ठी बाँधकर भगी और हाँपती हुई रोती चिल्लाती हुई अपने शिविर में आई। उसने कटी नाकपर कपड़ा रख लिया था। सैनिक सोचने लगे बूआजी ने आज घूँघट क्यों मार लिया है, कहीं फिर से पुनर्विवाह की बातचीत तो पक्की नहीं हो गई। उसने खर को बुलाकर कहा—"तुम लोग यहाँ खाकर पड़कर सोने को ही रहते हो या कुछ करते हो। देखो पंचवटी में दो राजकुमार आये हैं उन्होंने मेरी कैसी दुर्दशा कर दी है। उन्हें तुम लोग न तो मारना न खा ही जाना। पकड़ कर मेरे पास ले आओ। उन्हें मैं उनकी अशिष्टता का फल चखाऊँगी। कल प्रातःकाल उन्हीं का कलेवा करके अपनी भूख को बुझाऊँगी।"

अपनी बहिन सूर्पनखा के ऐसे वचन सुनकर खर को अत्यंत क्रोध आया। उसने बहिन को धैर्य बँधाते हुए कहा—"दीदी! तुम घबड़ाओ मत, तुम्हारे अपमान करने वाले मनुष्यों को मैं अभी बंधाकर मंगवाता हूँ, उन्हें उनके किये का फल अभी चखाता हूँ।" यह कहकर उसने अपनी चतुर्दश सहस्र सेना के विजयी वीरों से कहा—"वीरो! आज ही तुम्हारी वीरता प्रदर्शित करने का समय आया है। पंचवटी में रहने वाले उन मनुष्यों को तुम जीवित पकड़ लाओ शीघ्रता में उन्हें खा मत जाना। जीवित ही जीजी के पास ले आना।" अपने सेनापति के ऐसे वचन सुनकर राक्षस हल्ला मचाते चिल्लाते पुकारते श्रीराम के समीप पहुँचे। श्रीराम ने जब राक्षसों को युद्ध के लिये आते देखा, तो वे जटाओं को मुकुट के समान बाँधकर धनुष बाण लेकर एक टीले पर चढ़ गये। राक्षसों ने ज्यों ही प्रहार प्रारम्भ किया, कि राघव ने भी अपने अमोघ बाणों को छोड़ना आरम्भ किया। राम के बाणों के सम्मुख ठहरनेका साहस

न दिखाते। वे इतने यशस्वी थे, कि उनके यश के सम्मुख समस्त रंग फीके पड़ गये। तीनों भुवन इनकी यश की शुभ्रता से शुभ्र हो गये। वे इतने तेजस्वी थे, कि सूर्यदेव उनके महल के मार्ग को बचाकर ही खिसक जाते। उनकी दृष्टि को बचा कर ही अस्ताचल की ओर चल जाते। वे इतने धर्मात्मा थे कि बड़े बड़े धर्म प्राण मुनि भी उनकी धर्म निष्ठा के सम्मुख नत मस्तक हो जाते। वे इतने उदार थे, कि कुबेर भी उनसे भयभीत हो जाते, वे इतने यज्ञप्रिय थे, कि हवि-खाते खाते अग्नि को भी अजीर्ण हो गया। अश्विनी कुमारों की सम्पूर्ण पाचन की औषधियाँ समाप्त प्राय: हो गईं। वे इतने दानी थे, कि अपना सर्वस्व दान करके भी उन्हें सन्तोष नहीं होता। तभी तो आज रघुवंश संसार में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। उनके दान के सम्बन्ध की पुराणों में एक बड़ी प्रसिद्ध कथा है।

जिन दिनों महाराज रघु अयोध्या पुरी में राज्य करते थे, उन्हीं दिनों वरतन्तु नामक महर्षि अरण्य में रहकर यज्ञयागादि पुण्य कर्म किया करते थे। महर्षि के समीप बहुत से शिष्य अध्ययन करने आया करते थे। उन्हीं शिष्यों में से एक कौत्स नामक शिष्य थे। कौत्स मुनि बड़े ही सदाचारी गुरुभक्त तथा शील सम्पन्न थे। उनकी गुरु सेवा से महर्षि वरतन्तु अत्यन्त ही सन्तुष्ट थे। जब वे अपनी विद्या समाप्त कर चुके तब उन्होंने गुरु से गुरु दक्षिणा के लिए प्रार्थना की।

गुरु ने कहा—"भैया, तैंने हमारी मन लगा कर सेवा की है, यही तेरी गुरु दक्षिणा पर्याप्त है तू एक गौ देकर नियमानुसार विवाह करके गृहस्थी हो जा और गुरु दक्षिणा की आवश्यकता नहीं।"

जानकी और लक्ष्मण के चले जाने के अनन्तर श्रीराम ने जटाओं को बाँधा, धनुष बाणों को ठीक किया, कमर पर फेंटा कसा और वे मत्त सिंहशावक के समान राक्षसों की ओर चल दिये। वे एक ऊँचे टीले पर बाँये पैर को पीछे करके, दायें को कुछ मोड़कर धनुप पर प्रत्यंचा चढ़ाकर, उसपर शर सन्धान करके खड़े हो गये। उनके ज्या की टंकारसे दशों दिशायें गूंजने लगीं। राक्षसों के अन्तः करण में भावीभय उत्पन्न हुआ। आगे के पैर को मोड़, धनुप पर बाण चढ़ाये जटा जूटों को बाँधे श्रीराम उस लघुशैल शिखर पर ऐसे शोभित होते थे, मानों साकार शरीर धारण करके वीर रस खड़ा हो। अथवा क्रोध किये अपने विश्वविजयी आयुध को ताने कामदेव खड़ा हो, अथवा साक्षात् युद्ध ही रूप बनाकर राक्षस वंश का संहार करने को उद्यत हुआ हो।

दूर से ही राक्षसोंने श्रीरामको देखा। वे राम के ऐसे मनोहर रूपको देखकर आत्म विस्मृत से हो गये। उनका चित्त राम के रमणीय रूप में उलझ गया। फिर भी युद्ध तो करना ही था, दोनों ओर से सर्र सर्र बाण चलने लगे। राक्षसों के सिर कट कट कर गेंदों के समान उछलने लगे। कोई हा मैया! कहकर भागता, कोई हा बप्पा! कहकर विकल होकर बैठ जाता, कोई बाण लगते ही मर जाता, कोई वाहन के नीचे दुबक जाता। कोई अवसर देखकर बाण चलाता। घोड़े हिन-हिनाने लगे, हाथियों चिंगाड़ने लगे। रथ टूटने लगे। दो प्रहर तक बड़ा ही घनघोर युद्ध हुआ। एक ओर तो अकेले श्रीराम थे और दूसरी ओर समस्त समर सामग्री से सुसज्जित चतुर्दश सहस्र रजनी चर राक्षस थे, राक्षस प्राणों का पण लगाकर बड़ी वीरता से लड़ रहे थे, वे रामके भवबन्धनछेदक कमल मुखको देखते देखते

उन्हीं दिनों महाराज रघु ने विश्वजित नाम का यज्ञ किया था। उसमें उन्होंने अपना सर्वस्व दानकर दिया था। यहाँ तक कि अपने वस्त्र आभूषण, धातुओं के पात्र भी ब्राह्मणों को दे दिये थे। अब वे मिट्टी के पात्रों में ही खाते थे। भूमि पर सोते थे। जब कौत्स मुनि गये तब राजा ने मिट्टी के पात्र से उनके पैर धोये और कुशासन पर बिठाकर सत्कार किया।

राजा ने बड़े आदर से कहा—"ब्रह्मन्! आप कहाँ से पधारे?"

कौत्स बोले—"राजन्! मैं भगवान् वरतन्तु के आश्रम से आ रहा हूँ, उन्हीं का मैं शिष्य हूँ।"

अत्यन्त ही आह्लाद के साथ राजा ने कहा—"ब्रह्मन्! मेरा अहोभाग्य! धन्यवाद! धन्यवाद? जो आपने मेरे ऊपर कृपा की। भगवान् वरतन्तु मेरे ऊपर बड़ी कृपा रखते हैं। कहिये, आश्रम में सब कुशल है न? आपके आसपास निन्नी के चावल श्रेष्ठ होते हैं न? मुनियों को वह अन्न बड़ा मीठा होता है। बिना जोते बोये वे चावल आपसे आप उत्पन्न होते हैं, हल बैलों से पृथिवी जोती नहीं जाती, जल के समीप यह मुनि अन्न स्वतः होता है। जिन मुनियों के पुत्र नहीं होते,वे वृक्षों का पालन पुत्रों के समान करते हैं। मैंने भगवान् वरतन्तु का आश्रम देखा था उन्होने थालें बना बनाकर बहुत से वृक्ष लगाये थे। अब तो वे बड़े हो गये होंगे? उन पर फल भी आने लगे होंगे। मुनियों के आश्रम में मृग स्वच्छन्द विहार करते हैं। आपके मृगों को कोई बाधा तो नहीं देता। आपके आश्रम में बड़े बड़े सघन वृक्ष हैं न? जिनके नीचे पथिक बैठकर अपना श्रम दूर कर सकें। आपके आश्रम में जल की कमी तो नहीं? गंगाजी की धारा दूर तो नहीं चली गई? लतायें यथेष्ट फूल देती है न? अतिथियों

उसी समय जन स्थान के अगस्त्य प्रभृति जितने महर्षि राजर्षि आदि महर्षि थे वे जुट आये। श्रीराम का अभिनन्दन करके उन सबने कहा—"श्रीराम! खर, दूषण और त्रिशिरा के सहित चौदह सहस्र राक्षसों को मारकर आपने संसार का बड़ा उपकार किया। अब यह जनस्थान निरापद हो गया। अब इसमें राक्षसों का भय नहीं रहा। अब इस वन में रहकर ऋषि मुनि निर्विघ्न होकर जप-तप यज्ञानुष्ठान करेंगे। राघव! इन राक्षसों को मरवाने के निमित्त ही तो हम आपको यहाँ लाये थे। सौभाग्य की बात है, कि आपने इन इतने बली राक्षसों को चाव की बात में मार डाला और आप सकुशल विजयी होकर लौट आये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! दण्डकारण्य में रहने वाले ऋषियों के ऐसे वचन सुनकर श्रीराम ने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की उनका सत्कार किया। श्रीराम से सत्कृत होकर सभी मुनि अपने अपने आश्रमों को चले गये। उसी समय गिरिगुहा से सीताजी को साथ लिये हुए लक्ष्मणजी लौट आये उन्होंने अपने विजयी भ्राता की पूजा की। जानकी ने अपने प्राणनाथ को युद्ध से सकुशल अक्षत लौटा हुआ देखकर अत्यन्त हर्ष प्रकट किया और बड़े उल्लास के साथ उनका गाढ़ालिङ्गन करके परम प्रमुदित हुईं।

छप्पय

दूषण खर अरु त्रिशिर रामतें लड़िवे आये।
निशिचर चौदह सहस राम यमसदन पठाये॥
निशिचर कीट पतंग राम लौ महँ जरि जावैं।
गूलर सम गिरि जायँ राम जब बान चलावैं॥
यातुधान जब सब मरे, चली लंक कूँ नककटी।
मरहिं निशाचर वेगि कब, लगी राम कूँ चटपटी॥

सकता। रघु के सम्मुख याचना करने वालों को फिर अन्यके यहां याचना करने की आवश्यकता नहीं।"

कौत्स ने आश्चर्य के साथ कहा—"राजन् ! आप इतना द्रव्य कहां से देंगे ?"

राजाने कहा—"जहां से भी शीघ्र मिल सकेगा वहीं से दूंगा।"

कौत्सने कहा—"शीघ्र तो कुबेर के भंडार से इतना सुवर्ण मिल सकता है।"

राजा बोले—"अच्छी बात है, कुबेर पर ही चढ़ाई करूंगा। आप एक दिन विश्राम तो करें।"

राजा के आग्रह को मुनि टाल न सके। वे अग्नि होत्रशाला में चतुर्थ अग्नि के समान पूजित होकर सुख पूर्वक रहे। राजा ने कुबेर पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। धन कुबेर रघु के यश पराक्रम से पहिले से ही शंकित थे। जब उन्होंने उनके संकल्पको जाना, तब तो वे डर गये। चुपके से रात्रि में वे उनके कोष को सुवर्ण से भर गये। प्रातःकाल ज्यों ही उन्होंने अपना रथ तैयार किया, त्यों ही सचिवों ने सूचना दी, कि सुवर्ण से सम्पूर्ण कोष भरा पड़ा है। राजा यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"समस्त सुवर्ण को ऊंटों पर, छकड़ों में लदवाकर मुनि के साथ भिजवा दो।"

कौत्स उस अटूट सुवर्ण की राशि को देखकर डर गये और आग्रह पूर्वक बोले—"राजन् ! मैं इतने धन को कभी न लूंगा। इतना सुवर्ण लेकर मैं क्या करूंगा, मुझे तो १४ करोड़ सुवर्ण-मुद्रायें ही चाहिए।"

कभी जल नहीं दिखाई दिया, फिर आज जल कैसे होगा ? यह सत्य होने पर भी वह मृग मरीचिका को सत्य सलिल समझकर उसके पीछे दौड़ता है, उस पानी को पीकर अपनी प्यास बुझाने का प्रयत्न करता है। मनुष्य सब समझता है, यह बात संभव नहीं असंभव है, फिर भी वह भावी वश होकर असंभव को संभव समझ कर उसे पाने के लिये पुरुषार्थ करता है। यही गुणमयी दैवी माया है, इसी को सिद्ध करने भगवान् असंभव सुवर्ण के मृग को पकड़ने के निमित्त दौड़े। वे क्या दौड़े उन्होंने मारीच को दौड़ाया और दौड़ाते दौड़ाते संसार सागर के परली पार पहुँचा दिया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! खर, दूषण, और त्रिशिरा मारे गये। उनकी सेना का संहार हुआ। राक्षसों को मार कर श्रीराम अपने आश्रम पर लौट आये। जब खर जैसा बली वीर मर गया, तब राक्षसों का गुप्तचर अकम्पन वहाँ से अत्यन्त ही शीघ्र लंका में रावण के समीप आया और हाँफता हुआ बड़े कष्ट से अपने दुःख को प्रकट करने लगा।

रावण ने अकम्पन को दुखी और भयभीत देखकर पूछा—"अकम्पन ! कहो, कुशल तो है ? जनस्थान में कुछ गड़बड़ तो नहीं। सब सैनिक आनन्दपूर्वक तो हैं ? तुम इतने दुखी निराश भयभीत तथा उदास क्यों हो ? अपने कष्ट का कारण मुझे बताओ।"

अकम्पन ने कहा—"हे राक्षसराज ! जनस्थान में कुशल कहाँ ? दूषण, और त्रिशिरा परलोक पधार गये। खर भी इसलोक से चल बसे। आपकी चतुर्दश सहस्र सुसंगठित सेना समरमें शत्रु के सरों से सुरपुर सिधार गई। जैसे तैसे सौभाग्य या दुर्भाग्य से मैं

समझा। उसके निर्णय को निन्दित माना किन्तु अज के सम्मुख वे कुछ कह न सके। अज और इन्दुमती उसी प्रकार मिल गये जैसे हिमालय के घर शिवपार्वती मिल गये थे।

दूर्वा के धागे मे महुए के पुष्पों की गुथी माला के साथ अपना हृदय भी इन्दुमती ने अज को अर्पित किया। अज के वक्षस्थल में पड़ी वह जयमाल उसी प्रकार हिल रही थी, जिस प्रकार नववर का हृदय प्रथम मिलन में हिलता है। उस समय लजाती हुई इन्दुमती के साथ जाते हुये कुमार उसी प्रकार शोभित होते थे मानो लज्जा के साथ कामदेव कहीं जा रहा हो। इन्दुमती इतनी सुन्दर थी कि अज ने अपना सर्वस्व उन्हें अर्पित कर दिया था। उसके सौंदर्य को देखकर सुर सुन्दरियाँ भी सकुचा जाती थीं। वह अपने पति को इतना प्यार करती थी, कि उनके बिना एक क्षण भी उसे असह्य हो उठता।

जब अज ने आकर इन्दुमती के सहित अपने पिता को प्रणाम किया, तो इन्दुमती को महाराज ने पुत्रवती होने का वर दिया और मुँह दिखाई में अपना सम्पूर्ण राज पाट और कोष उसे दे दिया। इस प्रकार मानों अपनी पुत्रवधू को ही पृथिवी देकर रघु तपस्या करने वन मे चले गये।

इन्दुमती ने कहा—"भरण करने से पति का नाम भर्ता भी है। आप जैसे मेरा भरण पोषण करते हैं। वैसे ही मेरी सखी इस पृथिवी का भी पालन कोजिये। मेरा अपना तो कुछ है ही नहीं। मेरे तो एकमात्र धन आप ही है।"

अज ने कहा—"प्रिये ! मुझे पृथिवी पालने में कोई रस नहीं

विचार तो दें छोड़। मैं जो कहूँ उसे आप करें। मुझ साधारण व्यक्ति की सम्मति पर विचार करें छल से आप राम को जीत सकते हैं। मैं आपको ऐसी युक्ति बताऊँगा कि न साँप मरे न लाठी टूटे।

यह सुनकर रावण गम्भीर होकर बोला—"वह, ऐसी कौन सी युक्ति है, भाई अकम्पन! उसे भी तुम मुझे बताओ, उस पर भी मैं विचार कर सकता हूँ।"

अकम्पन बोला—"अन्नदाता! आप जैसे प्रतिष्ठित विश्व-विजयी सम्राट को एक साधारण व्यक्ति के सम्मुख युद्ध करना उचित नहीं। आप एक काम करें। रामकी पत्नी बड़ी ही सुन्दरी है। तीनों लोकों में उसके समान सुन्दर स्त्री मैंने तो आज तक देखी नहीं। हो ही नहीं सकती। प्रतीत होता है, बूढ़े ब्रह्मा ने बनाते समय विश्वब्रह्माण्ड का समस्त सौन्दर्य उसके शरीर में ही भर दिया है। ऐसी स्त्री बनाकर ब्रह्मा फिर दूसरी वैसी बना ही न सका होगा। वह राममें अत्यधिक अनुराग रखती है। हरिणियों के साथ किलोल करती हुई वह दो पैर की हरिणी सी ही दिखायी देती है। उसका अंग प्रत्यङ्ग सुन्दर है। राम उसके अधीन हैं। उसके बिना राम रह नहीं सकते। रामकी वह जीवनी शक्ति है। राम उसमें घुल मिलकर एक हो गये। किसी प्रकार कौशल से यदि उन दोनों को पृथक् कर दो। सीता को छल बल से हर लाओ, तो राम तो उसके विरह में ही मर जायँगे। बिना शस्त्र के ही निर्जीव हो जायँगे। जो गुड़की गोली से ही मर सकता है, उसे विष देना व्यर्थ है। आप ऐसा प्रयत्न करें कि जानकी को किसी प्रकार ले आवें। एक पन्थ दो काज हो जायँगे, आपका शत्रु भी स्वयं मर जायगा और त्रैलोक्य सुन्दरी नारी भी तुम्हें मिल जायगी।"

का अन्तर नहीं पड़ा। यही नहीं वह उसी प्रकार और भी अधिक बढ़ गया, जिस प्रकार विदेश मे गये पति के लौटने पर पतिप्राणा का प्रेम और भी अधिक बढ़ जाता है। महाराज रात्रि दिन इन्दुमती को ही सोचते रहते थे। एक दिन वे अपनी प्रिया के साथ उपवनो में विहार कर रहे थे वे एक सुन्दर रमणीक स्थान मे सुख पूर्वक बैठकर अपनी प्रिया के साथ मधु से भी मधुर स्नेह से सिक्त आनन्द में पगी, अनुराग में भीगी, सरसता में सनी बातें कर रहे थे, कि उसी समय रामकृष्ण गुण गाते, संसारी जीवों को सुख का पाठ पढ़ाते, अपनी स्वर ब्रह्म विभूषिता वीणा को बजाते देवर्षि नारद वहाँ जा पहुँचे। उनकी वीणा के ऊपर कल्प वृक्ष के पुष्पों की माला टँगी हुई थी। राजा ने उठकर मुनि के पैर छूए, रानी ने मुनि की चरण वन्दना की। सहसा वीणाकी माला इन्दुमती के कमल से भी कोमल वदन से छू गई, ज्यों ही उसने दृष्टि उठा कर उस माला को देखा त्यों ही वह प्राणहीन होकर धड़ाम से पृथिवी पर गिर पड़ी, अपनी प्राणप्रिया को ऐसी दशा देख कर महाराज अज भी मूर्छित होकर गिर पड़े। कुछ काल में मूर्छा भङ्ग होने पर उन्होंने अपनी प्राणप्रिया के अङ्ग को प्राणहीनावस्था में देखा, वह ऐसी लगती थी, मानों कमलिनी को किसी ने मसल दिया हो। राजा उसे मृतक देख कर पुन: मूर्छित हो गये और भाँति-भाँति से विलाप करने लगे। उसके मृतक शरीर को गोद में रख कर राजा बच्चों की भाँति फूट फूट कर रोने लगे। सभी सेवक, सचिव, सामन्त तथा सगे सम्बन्धी एकत्रित हो गये। रानी की मृत्यु से सब को बड़ा दुःख हुआ। किन्तु कोई कर ही क्या सकता था। काल के आगे किसकी चलती है। अन्त में सब ने रानी का दाह संस्कार किया। राजा इन्दुमती के वियोग में सदा दुखी बने रहते थे।

यह सुन कर शौनक जी ने पूछा–"सूतजी ! पुष्प के छू जाने

देती; ओढ़नी से मुँह को ढाँके सूर्पणखा वहाँ आई और रावण को बुरी भली बातें कहती हुई बोली—"तुझे लज्जा नहीं आती, तेरा अपमान हो रहा है, तू सुख से सो रहा है। शत्रु तेरे सिर पर सवार है, तू अचेत पड़ा है। शत्रु-नामी है तू कामी है। तुझे अपने अधीनों को कोई चिन्ता नहीं। एक मिथ्या तपस्वी बालक ने तेरे भाई खर को मारा दूषण तथा त्रिशिरा को पछाड़ा और तेरा समस्त सैन्यबल संहारा। किन्तु तेरे कान पर जूँ भी नहीं रेंगती। तू सुरापान कर रहा है, रमणियों के साथ काम क्रीड़ा कर रहा है। देख तो सही मेरी कैसी दुर्गति कर दी है?"

रावण ने कहा—"लल्लो! तेरी यह नाक किसने काट ली? तेरे कान कहाँ गये? तू मुख क्यों ढाँके हुए है?"

सूर्पणखा बोली—"मेरी नाक नहीं कटी है तेरी नाक कटी है, मेरा अपमान नहीं हुआ तेरा हुआ है। मैं तेरे अपमान के कारण दुखी हूँ। मेरी नाक की कोई बात नहीं बाँस की बनवा लूँगी, किन्तु तेरी कीर्ति धूलि में मिल जायगी।"

रावण ने कहा—"कुछ बताती तो है नहीं, व्यर्थ की बातें बना रही है। तेरी नाक पर प्रहार किसने कर दिया। इसे किसने जड़ से कतर ली?"

सूर्पणखा बोली—"राम के छोटे भाई ने मेरी नाक काटी है?"

रावण बोला—"बात क्या थी?"

सूर्पणखा क्रोध में बोली—"बात क्या थी, पत्थर! हवन करते हाथ जलते हैं। मैं सदा तेरे उपकार में लगी रहती हूँ, तू सुरापान करके तान दुपट्टा सोता रहता है, राग रंग में फँसा रहता है। राम लक्ष्मण दोनों राजकुमार हैं दोनों ही बड़े सुन्दर बलवान दर्शनीय और बली हैं। उनके साथ एक प्यारी प्यारी

सूतजी कहते है – "मुनियों ! उसी हरिणीने शाप वश विदर्भ वंश मे जन्म लिया, वही महाराज अजकी पत्नी इन्दुमती थी। आज नारद जी की वीणा के ऊपर कल्पवृक्ष के पुष्पो की माला देखते ही वह मानवीय शरीर को त्यागकर स्वर्ग सिधार गई। रानी के मरने से राजा को जीने की तनिक भी इच्छा नही रही। फिर लोकलाज वंश कर्तव्य पालन की दृष्टि से वे जीते रहे। अब वे सदा उदास ही बने रहते थे। दशरथ के मुखको देख-देखकर वे निरन्तर इन्दुमती की स्मृति में रोते रहते। स्वप्न में उसका साक्षात्कार करके बडे प्रसन्न होते। इस प्रकार पिता के सरक्षण मे दशरथ बढ़ने लगे। कुछ काल मे ही बाल्यावस्था त्यागकर चली गई। अब युवावस्था ने उनके शरीर पर अधिकार स्थापित कर लिया पुत्र को युवावस्था में पदार्पण करते देख कर जो राजभार उन्हे यथार्थ में भार प्रतीत हो रहा था, उसे कुमार दशरथ के कोमल कंधोंपर शीघ्रता से डालकर वे सरयू के किनारे किनारे उस स्थान पर पहुँचे जहाँ जाकर सरयू भगवती भागीरथी मे मिलती हैं। वही रहकर और अनशन व्रत करके महाराज अजने अपने इस पाँचभौतिक शरीर को त्याग दिया।"

पिता के परलोक पधारने के अनंतर महाराज दशरथ समस्त प्रजा का पुत्रवद् पालन करने लगे। उनकी कीर्ति दशों दिशाओं में व्याप्त हो गई। उन्होंने दिग्विजय करके समस्त जीती हुई पृथिवी को पुनः जीत लिया। उन्हे राजा पाकर प्रजा पहिले राजाओं को भूल गई।

सूतजी कहते हैं—' मुनियों ! इन्ही पुण्यश्लोक महाराज दशरथ के यहाँ श्री राम अवतरित हुए। अब आप श्रीराम चरित्र को श्रद्धा भक्ति के साथ श्रवण करें।"

होगा। ननुनचका नाम नहीं। आज्ञोलंघन का काम नहीं। सौ बात की एक बात है। चलो मेरे साथ।"

मारीच बोला—"राक्षसेश्वर! तुम्हें हो क्या गया है? राम को क्या मैं जानता नहीं। मुझे एक बिना फरके बाण से उन्होंने समुद्र पार फेंक दिया। मेरी माँ को मार डाला। भाई को परलोक पठा दिया। राम से मैं डर रहा हूँ।"

रावण बोला—"डरने की कौन सी बात है मैं तो तुम्हारे साथ हूँ ही।"

मारीच बोला—"तुम से ३६० घूमते हैं। राम के सम्मुख तुम किस खेत की मूली हो। एक दिन मैं हरिन बनकर राम के समीप गया। तीन राक्षस और भी थे। श्रीराम ने तीन बाण मारे वे तीनों मर गये। तब से मुझे सोते, जागते, चलते, फिरते, उठते, बैठते, खाते पीते सर्वत्र राम ही राम दिखाई देते हैं। मैं संसार को राममय देखता हूँ। तुम्हें अपना जीवन प्रिय है तो अपने घर लौट जाओ। राम से डर कर ही तो मैं बाबा जी बन कर यहाँ योगाभ्यास कर रहा हूँ, जटा बढ़ाकर मौन रहकर फलाहार करके राम का चिन्तन कर रहा हूँ, उनके नाम से डर रहा हूँ।"

रावण बोला—"राम मेरे रहते तेरा कुछ भी नहीं कर सकता।"

मारीच बोला—"तब तू रह भी नहीं सकता।"

क्रोध करके रावण बोला—"बहुत बकबक मत कर। मैं तुझसे उपदेश लेने नहीं आया हूँ, तुझे आज्ञा देने आया हूँ। बोल, चलता है या नहीं?"

मारीच बोला—"मैं नहीं चलूँगा, नहीं चलूँगा, एक बार कहला लो सहस्र बार कहला लो।"

श्रीराघवेन्दु का प्रादुर्भाव

(६५०)

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः ।
अंशांशेन चतुर्धागात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥*

(श्री भा० ६ स्क० १० अ०, २ श्लोक)

छप्पय

सब सुख नृपके निकट पुत्र बिनु परि अति चिंतित ।
रानी सब सुत रहित वंशधर बिनु अतिदुःखित ॥
बिनती गुरु तैं करी रचायो मख सुतके हित ॥
ऋष्य ऋङ्ग पुत्रेष्टि यज्ञ करवायो प्रमुदित ॥
बढ्यो भूमि को भार बहु,सुर सब मिलि हरिढिँग गये ।
सेतु करन भव उदधि पै, अज अच्युत प्रकटित भये ॥

यह संसार सागर अगाध है, इसकी थाह नहीं । पार जाने का कोई निश्चित एक मार्ग नहीं । जीवका पुरुषार्थ स्वल्प है । इसका सर्वज्ञ स्वामी उसपार बैठा बैठा हँस रहा है ।

---

* श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! उन महाराज दशरथ के यहाँ देवताओं की प्रार्थनापर साक्षात् ब्रह्मय श्रीहरि अंशांश से चार रूपों से अवतरित हुए ।"

वृक्षों की आड़ में दुबक गया। मारीच सुवर्ण का मृग बन गया और वैदेही के सम्मुख इधर से उधर लीला पूर्वक घूमने लगा।

उस सुवर्ण के सुन्दर हिरण को देखकर वैदेही अत्यन्त प्रसन्न हुई। उन्होंने अत्यन्त उल्लास के साथ श्रीराम लक्ष्मण को पुकारा सीता की अत्यन्त प्रसन्नता को देखकर धनुष वाण लिये श्रीराम लक्ष्मण उनके समीप गये। अपने पति के समीप आकर वैदेही आश्चर्य संभ्रम और उल्लास के साथ बोली—"प्राणनाथ! इस मृग की पीठ कमल के शरके समान है इसका सम्पूर्ण चर्म सुवर्ण का है। वैदूर्य मणि के समान इसके सुन्दर सींग हैं। यह मणिमय मृग मेरे मन को मथितसा कर रहा है। यह देखने में बड़ा भला मालूम पड़ता है। यह सरल है सुन्दर है स्वच्छ है सुघड़ है, सुवर्ण वर्ण है, सुखद और आश्रम के समीप ही घूम रहा है। यदि यह किसी प्रकार जीवित ही पकड़ा जा सके तो इसे पकड़ लाइये। इसे मैं आश्रम में रखकर पालूँगी। इससे मेरा आपका बड़ा मनोरंजन होगा। वन की अवधि समाप्त होने पर भी मैं इसे साथ ले चलूँगी। अपनी सास को भेंट करूँगी। यह महलों में स्वच्छन्द घूमा करेगा। माताजी इससे बड़ा प्यार करेंगी। यदि यह किसी प्रकार जीवित न पकड़ा जा सके, तो इसे मार कर इसकी छाल ही ले आइये। इसकी मृग छाला बड़ी सुन्दर रहेगी। उस पर मैं आपके साथ बैठा करूँगी।

सीता को बालकों की भाँति अत्यन्त उत्सुक देखकर श्रीराम हँसते हुए बोले—"सचमुच यह मृग तो अद्‌भुत है। ऐसा विचित्र मृग तो मैंने आज तक न कभी देखा न सुना। इसके तो अंग-अंग में मणि मुक्ता ग्रथित हैं। यह तो अति सुन्दर अति मनोहर अति अद्‌भुत और अत्यन्त दर्शनीय है। तुम्हारे मनोरंजन के निमित्त

होगा। वे ऐसा करने को विवश थे, क्योंकि उन्हें ७ दिनों में ही सब कथा सुनानी थी। सब शास्त्रों का सार सार निकाल कर उन्होंने सबकी बानगी राजा को चखाई और सबका पर्यवसान अन्त में कृष्ण कथा में कर दिया। किन्तु सूतजी! हमें तो कोई समय का बन्धन नहीं। हमतो दीर्घजीवी हैं। अवतार कथा ही हमारा आहार है। उसे ही खाकर हम जीते हैं। सूर्यवंश के राजाओं की नीरस कथायें हमने चुपचाप इसीलिये सुनली कि इनका सार अन्त में निकलेगा। नही तो सूतजी! उस राजा को *यह रानी हुई वह राजा उस राजकुमारी पर आसक्त हो गया।* उसने स्वयम्बर में उसे माला पहिना दी, उसने युद्ध में उसे मार दिया। वह अप्सरा इतनी सुन्दर थी। उस मुनिने यह गड़बड़ सड़बड़ कर दी। उस राजा का यह पुत्र हुआ, यह पौत्र हुआ इन व्यर्थ की बातों से हम त्यागी विरागी साधुओं को क्या प्रयोजन? अजी हमतो भगवान् का प्रेम पूर्वक प्रसाद पाते हैं और भगवान् के नाम तथा यश का श्रवण और गायन करते हैं। हमारा तो मूल मन्त्र है।

"भगवद् भजन पेट को धंधो। और करै सो पूरो अंधो।' मनु से लेकर दशरथ तक के राजाओं की कथा हमने इसी आशा से सुनी कि आगे इसी वंश में मर्यादा पालक जन सुखदायक रविकुल नायक भगवान् कौशल किशोर उत्पन्न होंगे। उनके चरित्र को हम श्रद्धा सहित सुनेगे। सो, सूतजी! राम चरित्र कहने में आप कृपणता न करें। रामचरित्र को हमें विस्तार के साथ सुनावें।"

यह सुनकर सूतजी के रोम रोम खिल गये। उनका गला भर आया। "राम" इन दो शब्दों में कितनी मिठास है, कितनी

लिया था। यह सुकुमारी सीता सर्व सुखों और सम्बन्धियों को त्याग कर मेरे साथ वन में आई है, तो मैं भी सब कुछ समर्पण

करके इसे सुखी बनाऊँगा। इसकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करूँगा, इसीलिये श्रीराम ने इस विषय पर व्यर्थ विचार करना उचित

अच्छी बात है, तो अब श्रीराम के प्रादुर्भाव की आप कथा श्रवण करें।"

अज पुत्र महाराज दशरथ इतने पराक्रमी थे, वे देवासुर संग्राम मे अमरों ने आकर उनके पैर पकडे और असुरो से युद्ध करने की याचना की। रघुवंश विभूषण महाराज दशरथ ने देवों की प्रार्थना पर असुरों से युद्ध किया, उन्हें परास्त किया उनकी स्त्रियों की माँग मे भरे सिंदूर को पोंछ दिया, उनके बालों को खुलवा दिया और उनके ऐश्वर्य को फीका बना दिया।

महाराज का विवाह दक्षिण कोशल देश के राजा की कन्या कौशल्या के साथ हुआ। दूसरा विवाह कैकय देश के राजा की पुत्री कैकयी से हुआ। तीसरी उनकी पत्नी सुमित्रा थी। इस प्रकार महाराज के तीन प्रधान रानी तथा अनेक उपरानियाँ भी थीं महाराज पृथिवी पर दूसरे इन्द्र के समान निवास करते थे। उनके अवध के वैभव को देखकर शतक्रतु इन्द्र भी लज्जित हो जाते। उनके अन्तःपुर की शोभा को देखकर सुर ललनायें भी सकुचा जाती। उनकी सेना को देखकर स्वामिकार्तिकेय भी चकित हो जाते, उनके कोष को निहार कर कुवेर भी कंपित हो जाते। वे कल्प वृक्ष के समान सबके मनोरथो को पूर्ण करते कामधेनु के समान सभी को समस्त सामग्रियाँ देते, लोकपालों के समान प्रजा का पालन करते, प्रजापति के समान सबको प्यार करते। उनका जैसा ही ऐश्वर्य था वैसा ही तेज और पराक्रम भी था। उन्होंने अनेकों अश्वमेध यज्ञ करके ब्राह्मणों और याचकों को यथेष्ट दान दिये। इस प्रकार महाराज सहस्रों वर्षों तक पृथिवी का पालन करते रहे।

प्रजा का पालन करते-करते महाराज की युवावस्था प्रस्थान

से उधर घूमूँगा। यही सोचकर वे विपत्ति को अवसर देने तथा जानकी को कुछ दिन के लिए शरीर से पृथक् करने जान बूझकर मायामृग के पीछे दौड़े। यह मृग भी यथार्थ नहीं था राम का उस पर लुभाना भी यथार्थ नहीं था। पंचवटी में हरण होने के निमित्त बैठी सीता भी यथार्थ नहीं थीं। या सभी यथार्थ राम की लीलायें ही थीं। सरांश यह कि जो कुछ हो रहा था। राम जी की इच्छा से हो रहा था, मायामृग आगे आगे दौड़ रहा था। धनुष बाण धारण किये राम पीछे पीछे दौड़ रहे थे। राम उसे जीवित ही पकड़ना चाहते थे, इसीलिये, वे बाण नहीं छोड़ते थे। राम रूप के दर्शन करके ऐसा कौन दुर्मति होगा जो इस पाप पूर्ण संसार में शरीर सुख के लिये जीवित रहना चाहेगा। माया-मृग बना मारीच राम के बाणों से राम राम रटते हुए शरीर त्यागना चाहता था। इसीलिये वह राम को दौड़ा रहा था। राम अपने विरुद् की ओर देखकर अपने शरणागतवत्सल नाम को सार्थक करने के निमित्त विवश हुए उसके पीछे दौड़ रहे थे। वह कभी तो आगे से छिप जाता कभी लुक जाता, कभी पुनः सम्मुख प्रकट हो जाता कभी दौड़ लगाने लगता, कभी शनैःशनैः पीछे फिर फिरकर बड़े-बड़े नेत्रों से चकित चकित दृष्टि से देखने लगता, कभी चौकड़ियाँ भरने लगता, कभी उछलता, कभी कूदता, कभी केलि करता कभी राम की दृष्टि से ओझल हो जाता, कभी हरी हरी दुर्वा चरने लगता। राम चुपके से उसे पकड़ते, तो मुँह की दूब को मुँह में ही लिए फिर चौकड़ियाँ भरने लगता। इस प्रकार उसने दौड़ते दौड़ते कभी भी क्लान्त न होने वाले राम को क्लान्त बना दिया। श्रीरामचन्द्र थककर हरी हरी दूबपर बैठगये। विचारने लगे यह हाथ तो आता ही नहीं लाओ इसे मार ही दें।

सूतीजी कहते हैं—"मुनियो! राम की भक्तवत्सलता तो

फिर अपने समीप ही चरण सेवा करती हुई आद्याशक्ति महा-माया महालक्ष्मीजी से महाविष्णु सनातन पुराण पुरुष बोले-- "प्रिये ! मेरी इच्छा अब कुछ काल नर लीला करने की है, तुम यही तब तक अपने पिता समुद्र के घर रहो ।"

महालक्ष्मी आद्याशक्ति भगवती जगदम्बिका बोलीं-"अजी महाराज ! आप नर बनेंगे तो मैं नारी बनूँगी । बताइये ! मनुष्य योनि तो सभी योनियों में श्रेष्ठ है । आप उसमें लीला करें और मैं देखूँ ? नही यह कैसे होगा । छाया कभी शरीर से पृथक् हो सकती है ।"

प्रभु बोले-"अच्छी बात है,तुम मिथिला में जाकर अवतरित हो । मैं अवध में पुण्यश्लोक महाराज दशरथ के यहाँ उनकी भाग्यवती पत्नी कौशिल्या के गर्भ से उत्पन्न हूँगा । वे धर्मात्मा राजा आजकल पुत्र की कामना से एक पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे है, मैं उनकी इच्छा पूरी करूँगा । स्वयं यज्ञ पुरुष मैं उनके यहाँ पुत्र बनकर प्रकटित हूँगा ।"

भगवती जगदम्बिका बोली-"मैं तो पृथिवी की पुत्री बनूँगी अयोनिजा होकर अवनिपर अवतरित होऊँगी ।"

भगवान् बोले—"अच्छी बात है. पहिले मैं चलता हूँ पीछे तुम आ जाना ।"

उसी समय चक्रवर्ती महाराज दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ समाप्त हुआ । समाप्ति के समय साक्षात् हव्य वाहन अग्निदेव एक सुवर्ण पात्र में पायस लेकर प्रकट हुए । उन्होंने उस खीर पात्र को राजा को देते हुए कहा—' इसे अपनी पत्नियों में यथा-योग्य बाँट दो । तुम्हारी इच्छा पूरी होगी ।"

मारीचोद्धारक श्रीराम

(६६२)

सीताकथा श्रवणदीपित हृच्छयेन,
सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण ।
जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाश्रमतोऽपकृष्टो
मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥❀
(श्री भा० ९ स्क० १० अ० १० श्लो०)

छप्पय

बोली पति तैं लिपटि हरिनि जिह अद्भुत प्रियतम ।
पकरो जाकूँ खेल करयो करि हैं मिलि हम तुम ॥
सीताकूँ सुख दैंन चले शर धनु लै रघुवर ।
अति उत्सुकता बढ़ी कनकमृग को हित हरिउर ॥
धनुधारी रघुनाथ कूँ, लखि पीछे भाग्यो असुर ।
मारहिं नहिँ पकरयो चहैं, सोचहिँ प्रभु मृग अति सुघर ॥

राम के सर्व काम जगत् के उद्धार के ही निमित्त हैं। राम का प्यार दुलार, उनका क्रोध, स्पर्श, सत्संग, चिन्तन मनन सभी

❀ श्रीशुकदेव जी कहते हैं—"राजन् ! इसके पश्चात् सीता के सौन्दर्य की सराहना सुनकर कामातुर रावण ने मृग बने मारीच को पंचवटी भेजा। वह श्रीराम को लुभाकर आश्रम से दूर ले गया। श्रीराम ने उसे शीघ्र ही एक बाण में उसी प्रकार मार दिया जिस प्रकार दक्ष को उसके यज्ञ में वीरभद्र ने मार डाला था।"

उन्ही से दिलवाने की उनकी इच्छा थी । कौशल्या ने अपने भाग से सुमित्राजी को दिया । कैकेयी ने भी उन्हे दिया । इस प्रकार तीनों रानियो ने उस दिव्य अमृतोपम पायस को पति की आज्ञासे प्रेम पूर्वक पा लिया । उसे पाते ही तीनो रानियाँ गर्भवती हो गईं । उन तीनो का गर्भ शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा । समस्त प्रजा मे आनन्द छा गया । भूमि शस्यश्यामला हो गई । देवता परम प्रमुदित हुए । असुरों का तेज क्षीण हो गया । राक्षस भयभीत से प्रतीत होने लगे । सभी के मन में एक अव्यक्त आह्लाद उत्पन्न हो गया । इस प्रकार नौ मास पूर्ण होने पर शुभ मास, शुभ पक्ष, शुभ तिथि, शुभ वार, शुभ कर्ण शुभ मुहूर्त, शुभ ग्रहनक्षत्र सबके एक साथ शुभ हो जाने पर दिन के मध्य भाग मे जब सूर्यदेव सिर पर आ गये थे तब कौशल्या रूपी प्राचीदिशि से दूसरे सूर्य का प्राकट्य हुआ । मानो सूर्यदेव फिर से अपने कुल मे बालक बनकर उत्पन्न हुए । कौशल्या ने एक रत्न को उत्पन्न किया । पुत्रोत्पत्ति सुनकर सर्वत्र बाधायें बजने लगे । स्त्रियाँ मंगलगान करने लगी, देवता स्वर्ग से पुष्पों की वृष्टि करने लगे । चैत्र शुक्लानवमी को श्रीराम का प्राकट्य हुआ ।

छप्पय

अगिनि कुंड तें प्रकट भये पायस नृप दीन्हों ।
तीनों रानिनि दियो भाग न्यायोचित कीन्हों ॥
गर्भवती सब भईं सबनिके हिय हुलसाये ।
शुभ मुहूर्त शुभ समय राम कौशल्या जाये ॥
शुक्लपक्ष मधुमास की, नवमी अति पावन परम ।
प्रकटे रघुकुल चन्द्र शुभ, भयो अजन्मा को जनम ॥

सम्पूर्ण बल से श्रीराम के स्वर का अनुकरण करके, अत्यन्त ही करुण वाणी में "हा ! सीते ! हा ! लक्ष्मण !" पुकारा। मन में रामस्वरूप का ध्यान किया। दृष्टि को राम के चरणों में लगाते लगाते, उनके सौन्दर्यामृत रस का पान करते करते उसने इस नश्वर शरीर को त्याग दिया। उसके प्राण परलोक को प्रयाण कर गये। वह राक्षस प्राणहीन हो गया।

श्रीराम ने जब देखा, कि यह तो मृग नहीं राक्षस है, तब तो उन्हें अपने छोटे भाई परम बुद्धिमान लक्ष्मी संपन्न लक्ष्मण की बात याद आई। वे सोचने लगे—"लक्ष्मण का कहना सत्य ही निकला। यह तो यथार्थ में माया से ही मृग बना हुआ था। यह तो दुष्ट कपटी राक्षस निकला। लक्ष्मण ने बार बार कहा था, यह नीच प्रकृति का कपटी मारीच नामक राक्षस है, यद्यपि किसी बुरे अभिप्राय से यहाँ आया है। अवश्य ही इसका विचार खोटा रहा होगा। तभी तो मरते समय इसने मेरे स्वर में "हा ! सीते हा ! लक्ष्मण। कहकर पुकारा। इस आर्त स्वर को सुनकर स्वभाव से ही सुकुमारी जानकी की क्या दशा हुई होगी। वह मुझसे कितना स्नेह करती है। जो भी कुछ कार्य करती है, मेरी ही प्रसन्नता के निमित्त करती है। उसे मृग से क्या प्रयोजन था? उसकी तो यही उत्कट इच्छा रही होगी इसे सजा बजाकर खिला पिलाकर मेरा मनोरंजन करती, मुझे सुख पहुँचाती। उसकी समस्त चेष्टायें, समस्त क्रियायें मेरी सेवा के ही निमित्त होती हैं। प्रेम में पग पग पर अनिष्ट की आशंका बनी रहती है। मेरी आर्त वाणी सुनकर विह्वल हो गई होगी। इस समय उसके मन की क्या दशा हुई होगी, अवश्य ही उसने तुरन्त लक्ष्मण को भेजा होगा। यदि लक्ष्मण उसे छोड़कर चला आया तो कुशल नहीं।" इन विचारों के

है,क्योंकि आप के पुत्रने समुद्र पर सेतु बाँध दिया।" माता ने श्री राम को बुला कर पूछा—"राम, ये मुनि कह रहे हैं, कि मैं सबसे बड़ी हूँ, क्योंकि तुमने समुद्र पर सेतु बाँध दिया और मैं तुम्हारी जननी हूँ, ।"

श्रीराम ने कहा—"जननी तो बड़ी हैं, किन्तु सेतु बाँधना कोई बड़ी बात नहीं। अगस्त्यजी तो समस्त समुद्र के सलिल को एक चुल्लू में ही पी गये थे, अत: उनकी जननी आप से भी बड़ी हुईं। सब मुनि मिलकर अगस्त्य के पास गये और कहा-आप सबसे बड़े हैं। अगस्त्य मुनि हंसपड़े और कहा—"न अंजना बड़ी न हनुमान बड़े। न कौशल्या बड़ी न उनके सुत राम बड़े। न मैं बड़ा न मेरे माता-पिता बड़े। सबसे बड़ा तो राम का नाम है, जिसके प्रभाव से समुद्र पर सेतु बना जिसके प्रभाव से शङ्कर जी विष को पचा गये और जिसके प्रभाव से मैं सम्पूर्ण समुद्र के सलिल को पान कर गया।" राम से भी बड़ा राम का पवित्र मधुमय नाम है।

सूतजी कहते हैं—' मुनियो ! चैत्र शुक्ला राम नवमी के दिन श्रीरामचन्द्र का जन्म हुआ। दूसरे दिन दशमी को कैकेयी के गर्भ से राम प्रेम के साकार स्वरूप जगत् पावन श्री भरतजी का प्राकट्य हुआ और चैत्र शुक्ला एकादशी को सती सुमित्रा से अश्विनी कुमारों के समान, नर नारायण के समान, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के समान वे चारों कुमार अपने कमल मुखों से उस रनिवास को शोभायमान करने लगे। राजा की सैकड़ों रानियों के नेत्र उन अन्त:पुरी स्थित बालकों को उसी प्रकार निहारने लगे जैसे चार चन्द्रों को असंख्यों कुमुद कुसुम निहारते रहते हैं। वे चारों सब के सुखदाता थे।

जानकी ने कहा—"मैं तेरी कुछ भी नहीं हूँ। मेरे कहने का कुछ भी महत्व नहीं ? कहती हूँ तू अभी जा। यदि तू अब भी न जायगा, तो मैं समझूँगी तेरा विचार खोटा है, तेरे मन में पाप है। तू राम का अनिष्ट चाहता है, तब मैं जीवित रहते तुझे अङ्ग स्पर्श न करने दूँगी। अभी यहीं आत्महत्या कर लूँगी।"

यह सुनकर लक्ष्मणजी को बड़ा क्रोध आ गया। भक्त के हृदय को महान् ठेस लगी। सेवक अपनी सेवा का इतना घृणित पुरस्कार पाकर विचलित हो गया। उसका हृदय छलनी हो गया। अत्यन्त कष्ट के साथ लक्ष्मण ने कहा—"देवि ! तुम्हें धिक्कार है। तुम्हारी बुद्धि इस समय विपरीत हो गई। तुम यथार्थ सीता नहीं हो। तुम अब कामिनी बन गई हो। निश्चय ही तुम्हारा अपमान होगा। लो, मैं तो जा ही रहा हूँ किन्तु तुम्हारी भी कुशल नहीं।" यह कहकर लक्ष्मणजी ने रोते-रोते भूमि में लेटकर जानकी को दूर से ही साष्टांग प्रणाम किया और वे धनुष पर बाण चढ़ाकर शीघ्रतापूर्वक श्रीराम के चरण-चिह्नों का अनुसरण करते हुए उनकी पदरज को बचाते, उसे मस्तक पर चढ़ाते, दुखित, लज्जित, चिन्तित तथा खिन्न हुए चल दिये।

लक्ष्मण का चित्त चञ्चल हो रहा था। जानकी का प्रत्येक शब्द उनके हृदय में शूल की भाँति चुभ रहा था, वे बार बार सोचते थे, जनकनन्दिनी ने ये सब बातें श्रीराम के अत्यन्त स्नेह के आवेश कहीं हैं। फिर सोचते किन्तु उन्हें मेरे ऊपर ऐसा सन्देह कभी भी न करना चाहिए। मैं तुम्हें सुमित्रा से बढ़कर देवी कौशल्या से भी अधिक मानता हूँ। मैंने कभी दृष्टि उठाकर उनकी ओर देखा तक नहीं उन्होंने जो बातें कहीं, वे उचित ही

और भरत शत्रुघ्न ये दो दो साथ होने पर भी राम में इन सबका अन्तर्भाव होगा।"

अपने पुत्रों की ऐसी प्रशंसा सुन कर पृथिवीपति दशरथ परम प्रमुदित हुए। उन्होंने अपने कुल पुरोहित भगवान् वशिष्ठ का पूजन सत्कार किया। फिर उन्होंने बहुत से ब्राह्मणों को भोजन कराया याचकों को दान दिया। सभी ने हृदय से बालकों के अभ्युदय के लिये मनोकामना की और उन्हें भाँति भाँति के आशीर्वाद दिये। अब चारों कुमार बड़े लाड़ प्यार से बढ़ने लगे।

लक्ष्मण बाल्य काल से ही श्रीराम के अनुगत थे और शत्रुघ्न भरत के। पहिले-पहिले लक्ष्मण बहुत रोया करते थे, सुमित्रा ने गुरु वशिष्ठ को बुला कर उनसे प्रार्थना की—"प्रभो! यह बच्चा रोता बहुत है। इसे किसी की दृष्टि तो नहीं लग गई, किसी ने टोटका तो नहीं कर दिया। कोई यन्त्र मन्त्र कर दीजिये। झाड़ फूंक कर दीजिये या कोई और उपाय बताइये।"

वशिष्ठजी ने ध्यान से देख कर कहा—"रानी जी! इसका एक उपाय है, तुम इन्हें श्रीराम के पालने में सुला दिया करो। सुमित्रा जी ने ऐसा ही किया। रामजी के पालने में जाते ही लक्ष्मण किलकारियाँ मारने लगे वे उसी प्रकार प्रसन्न हुए जैसे अगाध समुद्र में जाकर मत्स्यराज का शिशु प्रमुदित होता है। अब तो माता को सरल उपाय मिल गया। लक्ष्मण को राम के पालने पर और शत्रुघ्न को भरत के पालने पर सुला कर वे निश्चिन्त हो जातीं। कौशल्या जी की सेवा करती रहतीं। मानों उन्होंने लक्ष्मण को कौशल्या को दे दिया और शत्रुघ्न को कैकेयी के लिये सौंप दिया। स्वयं सेविका बन कर दोनों बहिनों की

जानकी को एकाकी छोड़कर चले आये हो, यह तुमने उचित कार्य नहीं किये ?"

रोते-रोते लक्ष्मण बोले—"प्रभो ! मैं स्वेच्छा से जानकी को छोड़कर नहीं आया हूँ। आपके आर्तवचनों को सुनकर स्नेह वश अत्यन्त भयभीत हुई सीताजी ने मुझे यहाँ आने के लिये बलात् प्रेरित किया है।"

श्रीराम बोले—"तुमने मेरी आज्ञा का उल्लंघन क्यों किया ? मैं तो तुम्हें वहीं रहने को कह आया था।"

लक्ष्मण ने सिसकियाँ भरते हुए कहा—"मैं क्या करता। जानकी ने तो मुझसे ऐसी क्षुद्रतापूर्ण कठोर-कठोर बातें कहीं कि मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया। उसने मेरे और आर्य भरतजी के चरित्र पर भी सन्देह किया।"

श्रीराम ने कहा—"भैया ! स्त्री जब आपे से बाहर हो जाती है, तो न कहने योग्य बातों को भी कह डालती है। स्त्री अपने मनोगत भावों को क्रोध में छिपा नहीं सकती। क्रोधित स्त्री के सामने से हट जाना चाहिये। उसे उत्तर न देना चाहिये। और उसकी बुरी बातों का बुरा भी न मानना चाहिये।"

लक्ष्मण ने रोते रोते कहा—"प्रभो ! जिन्हें मैं देवता समझता हूँ जिनके चरणों की पूजा करता हूँ, जिनको कभी स्त्री भाव से निहारा नहीं उनका मेरे ऊपर ऐसा सन्देह करना मेरे लिये अत्यंत असह्य है तात ! उन्होंने कहा था—"तू अभी राम के समीप न जायगा तो मैं गोदावरी में कूद पड़ूँगी। विष पी लूँगी मर जाऊँगी।" इन्हीं बातों से क्रोधित होकर मैं बिना इच्छा के आपके समीप आ गया।

श्रीराम अत्यन्त स्नेह के साथ बोले—"भैया, तुम मेरे बल पराक्रम को जानते थे, यह भी जानते थे, कितने भी राक्षस

मातायें उनके मनोहर मुख को देखकर अपने अङ्गों में फूली नही समाती। उन्हें बारबार छाती से चिपटाती। कई बार स्तनों का दूध पिलातीं लोरियाँ दे देकर पालने पर सुलातीं, गोदी में ले लेकर बड़े प्यार से खिलातीं, इधर उधर टहलाती, बोलना-चलना सिखाती, वस्तुओं के नाम बतातीं खिसकते खिसकते जब गिरने लगते तब उठाती प्रेम से ह्लिलाती। आँखों में मोटा-मोटा काजल लगाती। सुन्दर से सुन्दर वस्त्राभूषण मँगाकर पहिनाती। इस प्रकार सभी प्रकार से एकाग्रचित्त होकर वे श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न की देखरेख सेवा सुश्रूषा करती। ऐसा करने मे उन्हे हार्दिक प्रसन्नता होती।"

सूतजी कहते है—"मुनियो! जिनके घर में साक्षात् आनन्द-घन परब्रह्म ही प्रकटित हो गये है, उनके भाग्य और सुख के सम्बन्ध मे कुछ कहना तो व्यर्थ ही है। यही तो जीवका परम लक्ष्य है। यही तो मानव शरीर की सार्थकता है। जब राम कुछ बड़े हुए तो अपने भाइयों के साथ भाँति २ के खेल खेलने लगे।"

छप्पय

अब कुछ घुटुअन चलत फिरत इत उत महलनि महँ।
बलिबलि जावें मातु बुलावत हँसि सैननि महँ॥
छोटी छोटी लटें लटकि आनन पै बिथुरें।
चमकीली लखि वस्तु दौरि ताहीकूँ पकरें॥
पानी कूँ पप्पा कहैं, हप्पा माँगे मातुतें।
बप्पा भूपति कूँ कहत, धूलि मलत निज गात तें॥

वैदेही हरण

(६६३)

रक्षोऽधमेन वृकवद् विपिनेऽसमक्षम् ।
वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ॥
भ्रात्रा वने कृपणवत्प्रियया वियुक्तः
स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥*

(श्री० भा० ९ स्क० १० अ० ११ श्लो०)

छप्पय

बोले लछिमन त्रियाचरित मत मातु दिखाओ ।
कहें जानकी मरूँ राम ढिँग यदि नहिँ जाओ ॥
लखन दुखित ह्वै चले दशानन तब तहँ आयो ।
साधु समुझिकें सीय सहमि सादर बैठायो ॥
दुष्ट सीय लै चलि दयो, धेनु वधिक फँदे परी ।
दुखित गीध स्वर सुनि भयो, जानि दशानन सिय हरी ॥

प्रेम एक अमृत मय दिव्य तरु है, अनुराग उसकी जड़ें हैं। प्रेम सम्बन्धी अन्य व्यवहार उसकी शाखायें हैं, मिलन

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन् ! इधर राक्षसाधम रावणद्वारा श्रीरामके परोक्ष में विदेहराज कन्या श्रीसीताजीके हर लिये जाने पर "स्त्री सङ्गियों की" इसी प्रकार की गति होती है। इसे दर्शाने के लिये, अपनी प्रियतमा से वियुक्त होने पर अपने भाई लक्ष्मण के सहित श्रीराम दीन होकर वन-वन विचरते रहे।"

विविध रूप रखकर व्यक्त होता है। यदि करुण रस न हो, तो साहित्य मे कुछ रह ही न जाय। मिठाइयों मे माधुर्य को निकाल लिया जाय, तो वे किस काम की होंगीं। कोई भी रस करुण के बिना चमकता नही। करुण सभी रसों में अनुस्यूत है। करुण रस के बिना काव्य नीरस है। श्रीराम ने अवनि पर अवतरित होकर करुण रस की अविच्छिन्न धारा वहाई है,जो अभी तक वह कर भक्तों के हृदय को शीतलता प्रदान कर रही है और अनन्तकाल तक इसी प्रकार अविरल वह कर प्राणियों को कृतार्थ करती रहेगी। करुणा वियोग में, उत्कण्ठा में उत्पन्न होती है। कृष्णचरित्र संयोग चरित्र है, उसमें वियोग की एक झलक है, किन्तु वह बनावटी है, कृष्ण अपने हृदयेश्वरी से पृथक अवश्य होते है, किन्तु वह पृथकत्व कल्पित सा है। उसमे श्री कृष्ण अधिक दुखित नही होते वियोग तो वह है, कि दोनों ही रोवें दोनों ही छटपटावे दोनों ही बिलबिलावें, दो वियोग की धारायें समान रूप से वहें। करुणा का जैसा साकार स्वरूप राम चरित्र में मिलता है, वैसा संसार में कोई नहीं। राम का सम्पूर्ण जीवन रोते रोते बीता। बाल्यकाल मे वे माता की गोद में, पालने में, खेल मे रोते रहे। बड़े हुए तो रूखी जटा वाले बाबाजी के पल्ले पड़े। वहाँ माता पिता की स्मृति में रोते रहे। अरण्य मे भी विपत्ति के ऊपर विपत्ति पड़ी। अपनी प्राण प्रिया का वियोग हुआ वह तो पराकाष्ठा की करुणा थी। जैसे तैसे मिली कि फिर वियोग। जीवन भर रो रोकर ही उन्होंने करुणा की सरिता के पाट को बढ़ाया।

जिस हृदय में करुणा नहीं, स्निग्धता नहीं। वियोग कथा अनुभव करने की शक्ति नही वह राम चरित्र को पढ़े भी तो क्या समझ सकता है। कारुणिक हृदय ही राम चरित्र को

दिशाओं को आलोकित कर रही हो। तुम सूर्य की प्रभा चन्द्रमाकी चाँदनी अथवा मूर्तिमती द्युति तो नहीं हो। तुम सौन्दर्य की साकार प्रतिमा हो ? इस मांसाहारियों से सेवित घोरबीहड़ वन में एकाकी तुम यहाँ क्यों निवास कर रही हो ? तुम्हारे योग्य तो उत्तम से उत्तम सजे सजाये अन्तः पुर होने चाहिये, फिर तुम स्मशान की अग्नि के समान प्रदीप्त होने पर भी इस अयोग्य दुःखप्रद भयानक वन में क्यों खड़ी हुई हो ? मुझे अपना परिचय दो।"

कपट वेष बनाये रावण की बातें सुनकर श्री सीताजी ने सोचा, यह साधु है, मेरा अतिथि है, धर्मपूर्वक मुझसे प्रश्न कर रहा है, इसलिये इसकी बातों का उत्तर देना आवश्यक है, यह सोचकर अत्यन्त संक्षेप में उन्होंने अपना परिचय दे दिया और अन्त में कहा—"यह मैंने संक्षेप में आपको अपना परिचय दे दिया। अब आप भी बताइये आप कौन हैं, किस निमित्त यहाँ पधारे हैं ? मेरे पतिदेव मृगया के निमित्त वन में गये हैं। आप मेरा आतिथ्य ग्रहण कीजिये। यह फल मूल पाइये। तब तक मेरे प्राणनाथ अपने भाई लक्ष्मण के सहित लौट आवेंगे। तब आप उनके द्वारा सत्कृत होकर प्रेमपूर्वक प्रसाद पावें।

यह सुनकर दुष्ट विचार वाला वह बनावटी सन्यासी राक्षसाधम बोला—"सुन्दरि ! मुझे आतिथ्य की आवश्यकता नहीं। मैं आतिथ्य करने वालों पर अनुरक्त हूँ। मेरी तृप्ति फल मूलों से न होगी मैं फल फूल देने वाली को चाहता हूँ। हे भामिनि ! मैं तुम्हारे क्षणमात्र के सत्कार से सन्तुष्ट होने वाला नहीं मैं तुम्हें अपने हृदयका हार बनाना चाहता हूँ, तुम्हें अपनी प्रियतमा पत्नी बनाना चाहता हूँ।"

रावण के ये शब्द सती साध्वी सीताके हृदय में तीर के समान

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न अब लड़खड़ाते हुए माताओं की उङ्गलियों को पकड़ कर चलने लगे। तोतली वाणी में कुछ बोलने भी लगे। वे अपनी बाल लीला से पिता माताओं को सन्तुष्ट करने लगे। माताओं का सम्पूर्ण समय उनके लाड़ प्यार और देखरेख में बीत जाता। प्रातःकाल उठते ही वे सोते हुए बालकों को लोरिया देकर उठाती। उनका मुँह धुलातीं कुछ बालभोग खिलातीं। फिर नित्यकर्मों से निवृत्ति करा कर भाँति-भाँति के सुगन्धित तेल लगा कर उबटन लगा कर सुन्दर सुगन्धित सरयू जल से स्नान करातीं, बालों को सुलझातीं, आभूषणों को यथा स्थान सुन्दर चटकीली सुहावने रेशमी वस्त्रों को पहिनाती, फिर इधर उधर घुमाती, टहलातीं। महाराज उन्हें गोदी में लेकर चूमते पिता से कुमार भाँति-भाँति की क्रीड़ायें करते उनके दाढ़ी मोंछ के बालों को पकड़ लेते, चमकते हुए मुकुट को उतारने दौड़ते। महाराज प्यार से अपना मुकुट उतार कर श्रीराम को पहिनाते। जिससे उनका सब मुख ढक जाता मुकुट गले तक चला जाता। तब ऊब कर राम उसे उतारने का प्रयत्न करते, सभी हँस जाते। महाराज साथ साथ अपने थाल में बिठा कर सब को खिलाते महाराज मुख में कौर देते तो श्रीराम भी अपने छोटे छोटे हाथों में कोई मीठी वस्तु लेकर महाराज के मुख मे देना चाहते, किन्तु हाथ न पहुँचने के कारण वे विवश से हो जाते, तब तुरन्त महाराज उन्हें गोद में उठाकर उनके हाथ की वस्तु को खा लेते साथ ही उनके मुख को चूम लेते। चूमते समय कपोलों पर दाल भात, दही, कढ़ी लग जाती। जिसे देख कर रानियाँ हँस जातीं। महाराज स्वयं पोंछते तब आप भी कोई कढ़ी, दही, खीर आदि पतली वस्तु लेकर महाराज के मुख पर पोत देते, इससे सभी हँसने लगते। रानियाँ हँसते हँसते लोट पोट हो जातीं

यम आदि समस्त लोकपालों को वश में करने वाला लोक को रुलाने वाला रावण तुम्हारे अधीन है। तुम्हारे सम्मुख घुटने टेककर प्रणयकी याचना कर रहा है।"

जानकी ने कड़क कर कहा—"अरे, हट। नीच, कुत्ते, मैं तुझसे बातें करना भी नहीं चाहती। निश्चय तेरा काल तेरे सिर पर नाच रहा है, तभी तो तू रामकी पत्नी के प्रति ऐसे अशिष्ट वचन कह रहा, है जैसे मछली भूल से कांटों को निगल कर अपनी मृत्यु, स्वयं बुलाती है। जैसे मक्खी घृत को पीकर, पक्षी जाल के दाने खाकर, भूखा विष मिश्रित अन्न भक्षण करके पतंग दीपकी ज्योति पर मुग्ध होकर, हरिणी सुन्दर गायन सुनकर अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं उसी प्रकार तू अपनी मृत्यु स्वयं चाहता है। यदि तुझे जीवन प्रिय है, तो तभी तक इस वन से भागजा जब तक धनुर्धारी रघुनन्दन नहीं आते, उनके आते ही निश्चय ही तू मारा जायगा। अपने पापका फल पायेगा।"

रावण ने गम्भीर होकर कहा—"हे वरानने! मैं तुम्हारे बिना जा नहीं सकता। मैं तुम्हारे रूप पर अनुरक्त हूँ, तुम्हें चाहता हूँ, मेरा जीवन तुम्हारे अधीन है। यदि तुम प्रसन्नता पूर्वक न जाओगी तो मैं तुम्हें बलपूर्वक हर कर लेजाऊँगा। इसलिये तुम अब व्यर्थ की बातें न बनाओ, मेरे समीप आओ, रामको भुलाओ। चलो, तुम मेरे साथ रथ में बैठ जाओ।"

जानकी का यह सुनते ही मुख लाल पड़ गया। वे क्रोध के कारण थर थर काँपने लगीं। अब रावण ने छद्म वेप को छोड़ दिया। वह बड़ा भयानक दशमुख वाला लम्बा तड़ङ्गा राक्षस बन गया। उसके ऐसे विकराल वेप को देखकर वैदेही डर गईं। उन्होंने आँखें मीच लीं। रावण ने उनके सिर और नितम्बों में

छप्पय

सखनि संग मिलि करें खेल अब चारो भैया।
चरित निरखि नृप सहित मुदित हों तीनों मैया॥
बड़े भये उपनयन करयो गुरु गृह भिजवाये।
मुनि वशिष्ठ प्रभु-शिष्य पाइ अति हिय हरषाये॥
गुरु सुश्रूषा करहिं सब. पढ़हिं पाठ एकाग्र चित।
समय शील संकोच युत, सुनहिं शास्त्र श्रुति तन्त्र नित॥

रुदन कर रही थी। वह अपने पति का बार बार नाम लेकर पुकार रही थी। अश्रु बहा रही थी, बिलबिला रही थी, छटपटा रही थी, हाथों से सिर और छाती को धुन रही थी, काँप रही थी सुवर्णलता के समान हिल रही थी, चीख रही थी और स्पष्ट स्वर में हिचकियाँ भरते भरते विलाप कर रही थी। वे रोते-रोते कभी तो कहतीं—"हा प्राणवल्लभ ! आपकी प्राणों से से भी अधिक प्यारी पत्नी को यह अधम निशाचर आपके परोक्ष में हरकर लिये जा रहा है आपको पता नहीं। कभी कहतीं-यतिवर लक्ष्मण ! मैंने स्त्री स्वभाववश तुमसे कटूक्तियाँ कहीं, क्रोध में भरकर तुम पर व्यर्थलांछन लगाया उसी का प्रतिफल मैं तत्काल प्रत्यक्ष भोग रही हूँ। इस नीच राक्षस द्वारा सताई जा रही हूँ। कभी वे वनदेवी देवताओं को प्रणाम करतीं और श्री राम से अपने हरे जाने का संदेश कहने की प्रार्थना करतीं। गोदावरी को अपनी दुर्दशा बतातीं। खग, मृग, तरु तथा वन में विचरने वाले सभी जीवों को सम्बोधन करके वे श्रीराम से समाचार देने की विनती करतीं। वे दुखी थीं, दीन हो रहीं थीं, करुण क्रंदन कर रही थीं। रावण उन्हें पकड़े हुए लिए जा रहा था। उसी समय वैदेही को वृक्ष पर ऊँघता हुआ गृद्धराज जटायु दिखाई दिया। उन्होंने बड़े आर्त स्वर में कहा—"आर्य ! देखो, देखो, यह राक्षसाधम मुझे बलपूर्वक पकड़े ले जा रहा है। तुम वृद्ध हो, पक्षी हो, इस दुष्ट की बराबरी नहीं कर सकते, इससे मुझे छुड़ा नहीं सकते, किन्तु मेरे स्वामी से संदेश तो कह ही सकते हो कि राक्षसराज रावण मुझे हरकर ले गया है। मेरे स्वामी केवल सुन भर पावें, वे मुझे स्वर्ग मे भी लौटा ला सकते हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! सोते हुए गृद्ध ने जानकी की ये बातें सुनीं। वे अपने विशाल पंखों को फड़फड़ाते हुए उठे। रावण

है । प्रभु की लीलायें प्राकृत सी दिखाई देने पर भी अप्राकृत हैं। वे मानवीय सी लगने पर भी दिव्य है,उनमें विश्व को विमोहित करने की शक्ति निहित है । जो श्रद्धा से उनकी इन लीलाओ को सुनेंगे वे तो लाभ में रहेगे, जो मानवीय भाव से इन्हें समझेंगे मानव ही बने रहेगें ।

सूतजी कहते है—"मुनियो ! श्रीराम अपने तीनों भाइयों के साथ साथ गुरु के घर मे पढ़ने गये । अब वे माताओं से पृथक गुरु घर में रहने लगे । अब वे राजसी वस्त्राभूषण नहीं धारण करते थे । मूंज की मेखला धारण करके रुरु नामक मृग का चर्म धारण करते । खदिर का दण्ड धारण करके कोपीन लगाते और गुरुगृह मे भिक्षा पाकर विद्याध्ययन करते । ब्रह्मचारी वेद में श्रीराम मूर्तिमान् ब्रह्मचर्य ही दिखाते । गुरु जो भी एक बार पढ़ा देते, उसे वे तत्काल याद कर लेते । याद क्या कर लेते, उन्हें तो सब वेदशास्त्र पहिले से ही याद थे । वेद तो उनकी स्वांस से ही उत्पन्न हुए है । शास्त्र तो उनका निर्मित शासन है उनकी सर्ग की स्मृति ही अनेकों स्मृतियाँ हैं । प्रथम तो भगवान् वशिष्ठ को उनकी ऐसी कुशाग्र बुद्धि पर आश्चर्य हुआ । फिर यह समझ कर कि ये तो साक्षात् परब्रह्म पुराण पुरुष है, उन्हें बड़ा हर्ष हुआ । उनके रोम-रोम खिल गये, उन्होंने अपने जीवन को सार्थक समझा ।

इस प्रकार स्वल्पकाल में ही श्रीराम ने सभी वेद, समस्त शास्त्र, सभी विद्यायें पढ़ ली । गुरु वशिष्ठ ने महाराज दशरथ से कहा—"राजन् ! आपके सब पुत्र समस्त विद्याओं में पारङ्गत हो गये । वे सभी शास्त्रों के ज्ञाता हो गये ।" यह सुनकर महाराज दशरथ परम प्रमुदित हुए । वे गुरु की आज्ञा से अपने प्राणों से

जटायु मृतक के समान पृथिवी पर गिर कर रक्त उगलते हुए लम्बी-लम्बी सांस लेने लगे।

अपने धर्म के ससुर और रक्षक पक्षिराज को मृतक दशा में देखकर वैदेही और भी अधिक विलाप करने लगीं। वे बार-बार विधाता को धिक्कार दे रही थीं। अपने भाग्य कोसती हुई करुण वाणी से कह रही थीं—"न जाने मैंने पूर्वजन्म में कौन-कौन से पाप किये हैं, जिनके परिणाम स्वरूप मेरे ऊपर विपत्ति के पहाड़ टूट रहे हैं। एक के ऊपर एक आपत्तियों के ऊपर आपत्तियाँ आ रही हैं। मेरे पति राज्य से भ्रष्ट हुए, परिजनों से पृथक् हुए। मुझे यही संतोष था, कि मेरे जीवन धन मेरे साथ हैं, किन्तु कुटिल काल ने आज मुझे उनसे भी दूर हटादिया। मेरी रक्षा के लिए ये पक्षिराज लड़े थे, ये भी प्राणहीन होकर पृथिवी पर पड़े सदा के लिये सो रहे हैं। हाय! मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, कैसे जाऊँ?" ऐसा कह कर जानकी इधर उधर बाण से विधी हरिनी के समान दौड़ने लगी। भागते समय उनकी ऐड़ी तक लटकने वाली चोटी हिल रही थी। मानों काली नागिनी उनके पीछे दौड़ रही हो और उसी के भय से वे भाग रही हों। वे कभी वृक्षों से लिपट जातीं, कभी किसी गुफा में घुस जातीं, कभी भूमि पर लोट जातीं। कभी खड़ी होकर हा प्राणनाथ! हा प्राणवल्लभ! कहकर चिल्लाने लगतीं। रावण उनके पीछे दौड़ता हुआ कहता—"रोओ मत, धैर्य धारण करो। राम तुम्हें अब नहीं मिल सकते। अब तो तुम्हें मेरे ही अधीन रहना पड़ेगा।' जब जानकी अत्यंत ही रोती हुई एक अशोक वृक्ष से लिपट गई, तो रावण ने बलपूर्वक उनकी लटकती हुई चोटी पकड़ी। उसमें गुँथे पुष्प नीचे गिर पड़े जिन्हें श्रीराम ने बड़े अनुराग से उनके बालों में लगाया था। उनका पीताम्बर

महामुनि विश्वामित्र का आगमन सुनकर राजा सहसा सकपका गये। वे शीघ्रता से सिंहासन पर से उठ कर नंगे पैरों ही वशिष्ठ जी को आगे करके मुनि के स्वागत के निमित्त चले। द्वार पर पहुँच कर राजा ने मुनि के पादपद्मों मे प्रणाम किया,शास्त्रीय विधि से उनकी पूजा की। कपिल गौ उनको भेट की और बड़े सत्कार से उन्हें अपने यहाँ ले आये।

मुनि की पूजा होने के अनन्तर दोनों ओर से कुशल प्रश्न हो जाने के उपरान्त हाथ जोड़ कर स्नेह भरी वाणी में राजा दशरथ वोले–"ब्रह्मन् ! आज मेरे यज्ञादि समस्त शुभ कर्म सफल हो गये, आज मेरा घर पावन बन गया,आज मेरे पितर तर गये जो आप जैसे परमार्थियो की पादरज मेरे गृह में पड़ गई, ब्रह्मन् ! आपने मुझे दर्शन देकर अत्यन्त ही अनुग्रहीत किया। अब मेरी यह जानने की अत्युत्कट अभिलाषा है, कि भगवान् मुझे केवल कृतार्थ करने दर्शन देने ही पधारे हैं, या मेरे लिये कोई विशेष आज्ञा है।"

गम्भीर होकर विश्वामित्र वोले—"राजन् ! मैं एक आवश्यक कार्य से आपके समीप आया हूँ, यदि आप मेरी याचित वस्तु को देने का वचन दें, तब मैं कहूँ ?"

यह सुनकर अत्यन्त अधीरता प्रकट करते हुए दीन वाणी में राजा वोले—"प्रभो ! आप यह कैसी बातें कह रहे हैं। ऐसा प्रश्न तो दूसरों से किया जाता है। मैं तो आपका अनुगत. अनुचर, शिष्य, सेवक, सुत तथा आज्ञाकारी भृत्य हूँ। स्वामिन् ! मेरा राज्यपाट, कोष, सुत, परिवार सर्वस्व आपका है। आप आज्ञा करें, यदि प्राण देकर भी मैं आपकी आज्ञा का पालन कर सकूंगा तो करूंगा, यदि आप इन्द्र का सिंहासन चाहेंगे, तो उसे

मे उन्होंने वे आभूषण डाले थे। रावण उस समय अपने आप में मस्त था। अतः जानकी का यह कृत्य वह देख न सका। रावण समुद्र के ऊपर ही ऊपर उड़ता हुआ अपनी सुवर्ण से बनी लंका पुरी में पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर उसने एक अत्यंत ही सजे सजाये महल में सीता जी को ले जाकर रख दिया। और सबको चेतावनी दे दी—"कोई भी इससे मेरी आज्ञा के बिना नहीं मिल सकता।" इस प्रकार वह आज्ञा देकर प्रसन्न हुआ। उसने जन स्थान की रक्षा के लिये बहुत से राक्षसों को भेजा और फिर वह सीता के समीप जाकर उन्हें अपने वश में करने के लिये उनसे विविध भाँति से प्रार्थना करने लगा। पहिले तो उसने जानकी को बड़े बड़े प्रलोभन दिये। अपना ऐश्वर्य दिखलाया, अपना महत्व प्रभाव प्रताप जतलाया। फिर भाँति भाँति से डराया धमकाया। राक्षसियों का विकराल भयंकर रूप दिखाया। जब जानकी किसी प्रकार सहमत नहीं हुई और उसे निर्भय होकर खरी खोटी बातें ही सुनाती रहीं, तो वह चिंतित हुआ। उसे शाप था, कि वह किसी स्त्री से उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात्कार करेगा, तो निश्चय ही उसकी मृत्यु हो जायगी। इसलिये वह सीता जी से बलात्कार तो कर नहीं सकता था, उसने अपने सेवकों को आज्ञा दी इसे नगरी से बाहर अशोकवाटिका में ले जाओ। मैं इसे १२ महीने की अवधि देता हूँ, इस बीच में यदि यह मेरे अनुकूल बन गई, तब तो ठीक ही है। नहीं तो मैं इसे काटकर कच्चा ही खा जाऊँगा। एक दिन का जलपान इसी को खाकर करूँगा।" ऐसा कहकर रावण चला गया। राक्षसियों ने सीताजी को अशोकवाटिका में ले जाकर रख दिया। वहाँ भयंकर भयंकर मुखों वाली राक्षसियों का ही पहरा था। वे जानकी को विविध प्रकार से डराती धमकाती रहती थीं।

मुनि बोले—"राजन् ! यह काम आपके मान का नही। आप उन राक्षसों को नहीं मार सकते। आपकी सेना कुछ काम न देगी।" राजा ने पूछा—"प्रभो ! ऐसे वे कौन से राक्षस है,मैं नहीं मार सकता।"

मुनि बोले—' राक्षसों का राजा रावण है उसकी प्रेरणा से सुन्द, उपसुन्द मारीच, सुबाहु आदि बहुत से राक्षस आकर मेरे मख में विघ्न डालते है। उन्हीं से मुझे भय है। उन्हें मैं राम के द्वारा मरवाऊँगा।

रावण नाम सुनते ही राजा परम भयभीत हो गये, बोले—"ब्रह्मन् ! उस दुष्ट रावण ने तो तीनों लोको को जीत लिया है हमारे पूर्वज महाराज अरण्य को मार दिया है। ब्रह्मन् मैं उससे युद्ध नहीं कर सकता। सुन्द उपसुन्द का भी पराक्रम मैंने सुना है। मैं मेरी सेना समस्त भूपतिगण रावण से युद्ध नहीं कर सकते। इनके साथ युद्ध करने मै अपने पुत्रों को कभी न दूँगा। किसी प्रकार न दूँगा। आप चाहें शाप देकर मुझे भस्म ही क्यो न कर दे।"

यह सुनकर मुनि कुपित हुए। उन्होंने राजा को डराया धमकाया। साम दाम, दण्ड-भेद आदि सभी उपायो से विवश किया। राजा थर-थर कांप रहे थे, डर रहे थे, भयभीत हो रहे थे, किंतु राम लक्ष्मण को देने को उद्यत नहीं थे। मुनि ने राम का प्रभाव बहुत समझाया, ये साक्षात् विष्णु हैं अनेक प्रमाणो से सिद्ध किया अपने तप तेज का प्रभाव बताया, रक्षा करने का आश्वासन दिया। किन्तु राजा किसी प्रकार मानते ही नहीं थे। मुनि का आग्रह था कि मैं राम लक्ष्मण को लेकर जाऊँगा। राजा का प्रतिज्ञा थी चाहे पृथिवी उलट पलट हो जाय, इधर का सूर्य

विरही राम

(६६४)

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्।
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः॥
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः।
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥*
(श्री भा० ५ स्क १९ अ० ५ श्लो०)

छप्पय

इत मारीचहिं मारि लखन लखि राम रिस्यावत।
कुटी सीयबिनु निरखि बिलखि रोवत पछितावत॥
जड़ चेतनको भेद भूलि भामिनि हित भटकैं।
खग मृग तैं सिय पतो पूछि सिर धुनि कर पटकैं॥
इत उत चितवत चकित है, नयन नीर धारा बहत।
तात धीर धारन करो, रामअनुज पुनि पुनि कहत॥

प्रिय विरह में जड़ चेतन का बोध रहता ही नहीं। जिस विरह में शरीर की सुधि है, वह विरह विरह ही नहीं। विरह

---

*श्रीशुकदेवजी कहते हैं—"राजन्! भगवान् कौशलकिशोर का यह मनुष्यावतार केवल रावणादि राक्षसों के मारने के लिये ही नहीं हुआ था, किन्तु लोगोंको शिक्षा देनेके निमित्तही यह अवतार हुआ था। नहीं तो आप ही सोचिये जो साक्षात् ईश्वर हैं अपनी ही आत्मामें सदा रमण करने वाले हैं, उन्हें सीताके हरण पर इतना भारी दुःख किसी प्रकार हो सकता था?"

सरल स्वभाव से राजीव लोचन बोले—"भगवन् ! जब समस्त भयों को नाश करने वाले आपका वरद हस्त हमारे ऊपर है तब हमें भय किस बात का । भगवान् की जैसी आज्ञा होगी उसका अक्षरशः पालन करेगे ।"

श्रीराम के ऐसे सारगर्भित वचन सुनकर विश्वामित्रजी वही रह गये और नित्य कृत्य करके उन्होंने वह रात्रि वही बिताई।
प्रातःकाल मुनि ने भोर में दोनों भाइयों को अत्यन्त स्नेह से जगाया । नित्यकर्मों से निवृत्ति होकर वे आगे बढ़े ।

मार्ग में उन्हें बडे मुख वाली, लम्बी लम्बी दाँतों वाली ताड़का नाम की राक्षसी मिली । उसका मुख पर्वत की कन्दरा के समान था । हल की फार से भी बड़े उसके दाँत थे। खुटेके समान उसकी दाढें थीं । सूप से भी बड़े उसके कान थे । उसके स्तन ऐसे लगते थे मानों दो पर्वत शिखर उसकी छाती पर रखें हों, उसके बाल बिखरे हुए थे । बड़े बडे हाथ थे, उसके उस विकराल रूप को देखकर श्रीराम तनिक भी विचलित नही हुए उन्होंने विश्वामित्र जी से पूछा—"प्रभो ! यह विकराल भेष वाली राक्षसी कौन है ?"

विश्वामित्र जी बोले—"यह सुकेतु नाम क यक्ष की पुत्री है और सुन्द नामक राक्षस की पत्नी है, यह बड़ी क्रूरकर्मा है, रामचन्द्र इसे तुम मार डालो ।"

श्रीराम बोले—महाराज ! पहिले ही पहिले तो मुझे मारना आरम्भ करना है । श्री गणेश इससे ही करूँ ? स्त्री को ता अवध्या बताया है ।"

विश्वामित्र जी बोले—"भाई ! वेद शास्त्र को प्रकट करने वाले हम ऋषिगण ही तो हैं । जो सबको क्लेश देता हो, जिसके

लाईं न हँसती हुई आगे आईं। राघव का हृदय फक पड़ गया उनकी बाँई आँख के नीचे का पलक बार बार फरकने लगा। हरिनोंने मार्ग काट दिया। बाईं बाहु फरकने लगीं। सम्मुख स्यारियाँ आकर रोने लगीं। श्रीराम डर गये। उन्होंने दुःख संभ्रम शंका के स्वर में पुकारा—"जानकी! सीते! प्रिये! कहाँ हो?"

कुछ भी उत्तर न पाकर श्रीराम शीघ्रता पूर्वक कुटी में घुस गये। वहाँ जानकी नहीं थीं। वे घबराये, तुरन्त द्वार पर आये और हा प्रिये! हा सीते। कहकर, कटे वृक्ष के समान धड़ाम से धरती पर गिर गये। लक्ष्मण ने शीघ्रता से आँसू पोंछते हुए राघव को उठाया। उनकी धूलि पोंछी और मधुर वाणी में कहने लगे—"रघुनन्दन! आप इतने अधीर न हों। जानकी मिल जायँगी। कहीं जल लेने या पुष्प तोड़ने गोदावरी के निकट गई होंगीं।"

"जानकी मिल जायँगी, वे गोदावरी तट पर होंगीं" इन शब्दों को सुनते ही राघव के रोम रोम खिल उठे। ऐसा लगा मानों किसी ने उनके शरीर में जीवनी शक्ति का संचार कर दिया हो। वे तुरन्त उठकर दौड़े। क्षण भर में वे गोदावरी के समीप आये। किनारे पर खड़े होकर उन्होंने पुकारा-"प्रिये! सीते! तुम कहाँ हो? समीप की गुफा से अपने ही शब्द की प्रतिध्वनि सुनकर राम हर्षित हुए वे पुनः पूरी शक्ति लगाकर बोले—"जानकी! मैं मृगया करके लौट आया हूँ तुम आजाओ।" इतना कहकर वे चकित चकित दृष्टि से इधर उधर निहारने लगे। फिर सीता को आते न देखकर समीप के ही कुंजमें जाकर कहने लगे—"जानकी! तुम बहुत हँसी विनोद करती हो। देखो, इतनी हँसी अच्छी नहीं। मैं जान गया तुम मुझे देखकर छिप

लोग यहीं निवास करें। तुम्हारे रहने से यह वन परम पावन तीर्थवन जायगा।"

यह सुनकर लजाते हुए श्रीराम ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की और एक सघन वृक्ष की छाया में जहाँ जल का सुपास था, अपना आसन जमाया। सन्ध्या वन्दनादि नित्य कृत्यों से निवृत्त होकर मुनि सो गये। श्रीरामचन्द्र भाई लक्ष्मण के सहित उनके पैर दबाते दबाते अनेक कथाओं को पूछते रहे और विश्वामित्र जी श्रीराघव के पूछने पर प्राचीन कथायें सुनाते रहे। इस प्रकार वह रात्रि उन्होंने वहीं बिताई।

ताड़का वध की बात सुनकर शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! *श्रीरामचन्द्र जी ने स्त्रीवध क्यों किया? स्त्री को तो सर्वत्र* अवध्या बताया गया है। हम देखते हैं राम कृष्ण दोनों ही अव तारों ने वध कार्य स्त्री से ही आरम्भ किया श्रीराम ने आरम्भ में ताड़का बध किया और श्रीकृष्ण ने पूतना वध से मार धाड़ संहार आरम्भ किया। इसका क्या रहस्य है?"

यह सुनकर सूतजी बोले "महाराज? श्रीकृष्ण की बात तो आप मुझसे अभी पूछें नहीं। इन टेढ़े टाँग वाले काले देवता की मथुरा तो तीनों लोक से न्यारी ही है। हाँ मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम की बात मैं बता सकता हूँ। ये पुरुषोत्तमतो मर्यादा के साकार स्वरूप हैं। अतः ये मर्यादा विरुद्ध तो कोई कार्य कर नहीं सकते।"

ताड़का वध का प्रथम कारण तो यह है, कि अयोध्या से चलते समय ही विश्वामित्र जी ने श्रीराम को दिव्य विद्यायें

लटकती लटें तुम्हारी पंक्तियों के समान दिखाई देती थीं। सीता के मुख को कमल समझकर कभी तुम उस ओर बढ़ते थे, तो क्रीड़ा सहित अपने कर कमलों से तुम्हें बरजती थी, मेरे शरीर से आकर लिपट जाती और मेरे वल्कलों में अपने मुख को छिपा लेती। उस विदेहराज की प्यारी पुत्री को तुमने देखा हो तो मुझे बता दो। तुम्हारा यह गुन-गुन शब्द मेरी समझ में नहीं आता। मुझे स्पष्ट उसका पता बता दो। इतने में ही एक काली सर्पिणी उधर से जाती हुई दिखाई दी। श्रीराम उसके पीछे दौड़े और बोले—"नागिनि मेरी प्रिया की ऐड़ी तक लटकने वाली वैणी तुम्हारे ही समान थी जब वह बालों को सम्हाल कर वैणी बाँध कर क्रीड़ा के साथ मेरे समीप आती तो पीछे टेढ़ी मेढ़ी हिलती हुई उसकी वैणी मुझे तुम्हारे चिकने शरीर के सदृश ही लगती थी। तुम तो जानकी को जानती ही होगी। मेरे ऊपर दया करो कहाँ गई है, इतना ही मुझे बता दो। वह स्वर्ग में, पाताल में, कहीं भी होगी वहीं से मैं उसे खोज लाऊँगा। सर्पिणी सर्र से श्रीराम के आगे से निकल कर एक बिल में घुस गई। उसी समय एक यूथ भ्रष्टा मृगी ने अपने बड़े बड़े नेत्रों को फाड़कर श्रीराम को देखा। मृगी को देखते ही राम रो पड़े और बोले—"हे मृगी! तुम मेरे धनुष बाणों को देखकर डरो मत। मैं तुम्हें क्यों मारूँगा। तुम तो अबला हो। मैं तो सुवर्ण का मृग मारता हूँ, मेरी प्रिया को सुवर्ण का ही मृग प्रिय था। उसे प्रसन्न करने, मैं कनक मृग मारने गया था। उसे कैसे पता चल गया, कि मैं सुवर्ण मृग मारकर न ला सकूँगा। संभवतया इसीलिये, वह रूठकर कहीं छिप गई है। तुम तो उसका पता जानती ही होगी। स्त्री अपने मन की बात स्त्री से ही कह देती है। देखो मेरी प्रिया की आँखें तुम्हारे ही समान थीं, वह ऐसे ही डहडही दृष्टि से देखा करती थी। तुम्हारे

भगवान् ने डाँटकर कहा—"मेरे शासन को पुरस्कृत करके तुम उस वच्चे को दे दो।" यह तो नियम के विरुद्ध विशेष आज्ञा थी। यम ने दे दिया। इसी प्रकार ताड़का वध की गुरु आज्ञा सुनकर पहिले तो श्रीराम हिचके किन्तु जव गुरु ने वल देकर कहा—"इसे मेरी आज्ञा से मारो।" तब राम क्या करते गुरो राज्ञा गरीयसी" ताड़का को गुरु आज्ञा समझकर मारा।

दूसरी बात यह है, कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति विषयों की ओर है। जो मनुष्य सर्व प्रथम अपने वैषयिक प्रकृति को मार नही लेता तब तक वह कोई भी महत्व पूर्ण कार्य कर नही सकता। अतः प्रकृति पर विजय पाना यह पुरुष का प्रथम कर्तव्य है।

तीसरा कारण यह भी हो सकता है, एक प्राचीन कहावत है कि 'चार को न मारकर पहिले चोर की माँ को मार डालो जिससे चोर पैदा हो ही नही।" विश्वामित्र मुनिके मखमें मारीच सुवाहु ही वहुत विन्घ किया करते थे। रामजीने सोचा चोरोंको मारने के प्रथम इनकी माँ को मार दो। वाँध तभी बँधेगा जव उसकी मूल धारा रोकी जाय। हमने मारीच सुवाहु को मार डाला यह फिर ऐसे ही राक्षस पैदा करती रही तो मुनियों को कष्ट होगा, अतः पहिले मूल को ही निर्मूल करो इसलिये पहिले ताड़का को मारा तव मारीच सुवाहु को।

चौथा कारण यह भी हो सकता है, कि मनुष्य धन लुटने से उतना क्रोधित नही होता, अपने अपमान से उतना क्रोधित नहीं होता जितना स्त्रियों के वध से, उनके अपमान से क्रोधित होता है अतः उन्होने ताड़का को मारकर राक्षसों को मानों चुनौती दी कि अव तुम युद्ध के लिये तत्पर होजाओ। मैं समस्त राक्षसों का संहार करूँगा।"

और कठोर हैं। तुमने इधर से जाती हुई या राक्षसों के द्वारा हरण की हुई उसको देखा हो तो मुझे बता दो। फिर पीपल से कहने लगे—"हे अश्वत्थ ! तुम्हारी छाया में बैठकर मेरी प्रिया अपने श्रम को मिटाया करती थी। उसका उदर तुम्हारे पत्तों के सदृश था। तुम्हारे नीचे जाते हुए उसे परम सुख होता था, तुम जानकी के सम्बन्ध में कुछ जाते हो तो बता दो।" फिर केले को देखकर श्रीराम उससे लिपट कर कहते—"हे कदली ! तुम्हारे चिकने खम्भों के सदृश उसकी चिकनी जंघायें थीं। वह जब कभी काँपती तो तुम्हारे ही सदृश दिखाई देती थी सीता का तुमसे बड़ा स्नेह था। उसका कुछ ऋण तो चुकाओ।" फिर सम्मुख हाथी को आते देखकर उससे राघव कहते—"हे गजेन्द्र ! ठहरो-ठहरो ! मेरी बात तो सुनो। तुम्हारी सूँड़ के सदृश ही जिसके जघन हैं उस मेरी प्राणप्रिया पत्नी का पता तुम जानते हो क्या ? यदि जानते हो तो अपनी पीठ पर चढ़ाकर मुझे उसके पास पहुँचा दो।" फिर हँसिनी को देखकर कहते—"हे मन्द मन्द गामिनी ! मेरी प्रिया भी तुम्हारे समान इठला कर क्रीड़ा के साथ चलती थी। कहीं तुम्हारी चाल से होड़ लगाती-लगाती वह दूर निकल गई हो और तुम उसे छोड़कर मुझे उसका पता बताने आई हो तो मुझे बता दो। मैं तुम्हें जिता दूँगा। उसके सम्मुख कह दूँगा—"तुम्हारी चाल से इस हँसिनी की चाल अच्छी है।" यद्यपि यह बात झूठ होगी किन्तु मुझे तो तुमसे अपना प्रयोजन निकालना है। अर्थी दोष को नहीं देखता। आगे कुन्दरूकी बेल पर लाल-लाल कुन्दरुओं को लगे देखकर भगवान् उस लता से कहने लगे—"हे लते ! देखो जैसे तुम्हारे सुन्दर रक्त वर्ण के फल हैं वैसे ही मेरी प्रिया के चरण तल, करतल, जिह्वा, ओठ, कपोल और नेत्र के नीचे के

स्नेही पुत्र की भाँति निर्भय होकर मुनि से भाँति भाँति के प्रश्न करने लगे। विश्वामित्र जी भी उनके सभी प्रश्नों का अत्यन्त प्यार दुलार के साथ समझा समझा कर उत्तर देने लगे। श्रीराम के लिये ऐसे बीहड़ वन में एकाकी पैदल आना यह प्रथम अवसर था। अतः वे जिस वस्तु को भी देखते, उसी के सम्बन्ध में पूछने लगते। उन्हें विश्वामित्र का आश्रम देखने की बड़ी चटपटी लगी हुई थी। वे राक्षसों से युद्ध करने को बड़े ही लालायित थे, आज प्रातः काल ही विश्वामित्र जी ने उन्हें बहुत से दिव्य अस्त्र संधान उपसंहार विधि के सहित प्रदान किये थे। उनकी परीक्षा करने को श्रीराम अत्यन्त ही समुत्सुक प्रतीत होते थे। उन्होने मुनिसे पूछा—"प्रभो ! आपका आश्रम अब कितनी दूर है ? हम के दिन में वहाँ पहुँचेंगे ?"

विश्वामित्र ने श्रीराम की ठोढी में हाथ लगाते हुए उनके कपोल को छूकर कहा—"अरे बेटा ! अब कहाँ दूर है ? अब तो हम आ गये। देखो, यह तो ताड़का वन है, इससे आगे एक मुनियों का छोटा सा वन और है। उसी के आगे मेरा सिद्धाश्रम है।"

राम ने उत्सुकता से पूछा—"भगवन् ! आपके आश्रम का नाम सिद्धाश्रम क्यों पड़ा ?"

विश्वामित्र बोले—"रामभद्र तुमने सुना होगा, पुराण पुरुष विष्णुने इन्द्रको त्रिभुवन का राज्य देने के लिये वामनावतार धारण किया था. वे कश्यप अदिति के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने यही आकर तप किया था और यही वे सिद्ध हुए थे। इसीलिए इसका नाम सिद्धाश्रम है। मैं विष्णु का भक्त हूँ इसी आशा से इस सिद्धाश्रम पर तप कर रहा था, कि कभी साक्षात् विष्णु को यहाँ ले आऊँगा, सो आज मेरा

लक्ष्मण के वचन सुनकर श्रीराम बोले—"अच्छा, लक्ष्मण ! तुम फिर गोदावरी तट पर जाओ, कमलों के ह्रद को तो हम अभी देखकर आये हैं, तुम फिर उसे देखना । उनके भीतर घुस जाना । सभी कमलों की नाल को हिलाना । सघन वन में दूर तक जाना । वृक्षों पर चढ़ जाना कंदराओं में खोजना । पूर्ण शक्ति लगाकर सीता का नाम लेकर पुकारना ।"

अपने बड़े भाई की ऐसी आज्ञा सुनकर लक्ष्मण शीघ्रता से गोदावरी तट तक गये । किन्तु जब उन्हें कहीं भी सीता का पता न मिला, तो वे खिन्न होकर उदास मन से आकर श्रीराम के सम्मुख खड़े हो गये ।

अत्यन्त ही उत्सुकता से श्रीराम ने पूछा—"लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! क्या सीता का कुछ पता मिला । वह कहाँ छिपी थी ? क्या तुमने मेरी प्राण प्रिया को देखा ?"

लक्ष्मण बोले—"तात ! सर्वत्र ढूँढ़ने पर भी मैथिली नहीं मिलीं ।"

श्रीराम दुखित होकर बोले—"तुमने वृक्ष पर चढ़कर उसे पुकारा नहीं ?"

लक्ष्मण बोले—"प्रभो ! सबसे ऊँचे शाल पर चढ़कर मैंने पूरी शक्ति लगाकर सीता को पुकारा किन्तु मुझे कुछ भी उत्तर नहीं मिला ।"

इतना सुनते ही श्रीराम अपने हाथों से अपना सिर धुनने लगे । छाती पीटने लगे । ढाढ़ मार कर रोने लगे । रोते रोते वे संज्ञा शून्य से हो गये । तब भाई के दुख में दुखी लक्ष्मण ने उन्हें उठाया । धैर्य बँधाया और पुरुषार्थ का महत्व समझाया । श्रीराम का सीता के बिना सम्पूर्ण संसार सूना सूना सा दिखाई दे रहा था । उनके हृदय में रह रह कर आशंका उठ रही थी ।

दिखाते हुए कहा—"राघव ! सामने जो तुम्हें हरा-भरा आश्रम दिखाई दे रहा है, वही सिद्धाश्रम है। यहीं मैं रहता हूँ, इसे तुम अपना ही समझो।" श्रीराम दूर से ही आश्रम को देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

सम्पूर्ण आश्रम ब्राह्मी श्री से युक्त था। उसमें स्थान-स्थान पर सुन्दर सघन वृक्ष लगे हुए थे। जिन पर बैठे भांति-भांति से पक्षी कलरव कर रहे थे। मोर, चकोर, हंस, सारस, कारंडव समीप से सरोवरों के निकट किलोलें कर रहे थे। बहुत से वृक्ष फलो से लदे हुए थे। बहुतों पर पुष्प लगे थे। उन सबके थाले बने थे। वल्कल वस्त्र पहिने मुनिगण उनमे पानी दे रहे थे। बड़ी-बड़ी लताओं की स्थान स्थान पर कुंजें बनी थीं। विविध पुष्पों की दिव्य सुगन्धि से सम्पूर्ण आश्रम सुगन्धित हो रहा था। यज्ञ के धर्म की सुरभि आकाश मण्डल में व्याप्त होकर वायु को सुवासित कर रही थी। हरी-हरी मंजरी युक्त तुलसी स्थान-स्थान पर लगी हुई थी। केले के फलयुक्त वृक्ष हिल-हिल कर अतिथियो का स्वागत कर रहे थे। मृग इधर से उधर स्वच्छन्द फिर रहे थे। कहीं समा के चावल सूख रहे थे। कहीं वल्कल वस्त्र फैलाये हुए थे। कही समिधाएँ पड़ी थीं, कही कुशाओं के गठ्ठर रखे थे। उस आश्रम को देखकर श्रीराम का मन मयूर नृत्य करने लगा। आश्रम के मुनियों ने जब श्रीराम लक्ष्मण के साथ आते हुए श्री विश्वामित्र जी को देखा तो वे सभी अपने-अपने कार्यों को छोड़ कर उनके स्वागत के लिये दौड़े। सभी ने मुनि को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। मुनि ने आश्रम की कुशल पूछी। सबने मुनि का तिथिगत किया और श्रीराम लक्षणम का भी अतिथि सत्कार किया।

हाथ पैर धोकर श्रीराम लक्ष्मण ने आचमन किया

तुमने मेरी बड़ी सेवा की। अब तुम पुरी लौट जाओ। सबसे मेरा यथायोग्य कहना। भरत से कहना वह मेरी आज्ञा से राज्य करे। मेरे और्ध्वदेहिक कर्म कर दे। मैं अब सीता के वियोग में अधिक जीवित रह नहीं सकता।"

श्रीरामचन्द्रजी का ऐसा करुणा भरा विलाप सुनकर लक्ष्मण ने उन्हें धैर्य बँधाया और अत्यंत ही मधुर वाणी में बोले—"प्रभो! मनुष्यों जैसी अधीरता आपके अनुरूप नहीं। तात! जानकी का बाल भी बाँका नहीं हो सकता। उन्हें कोई मार कैसे सकता है वे अपने सतीत्व के तेज के प्रभाव से जहाँ रहेंगी सुरक्षित रहेंगी। स्वामिन्! बुद्धिमान् पुरुष घोर से घोर विपत्ति में भी धैर्य को नहीं छोड़ते। वे पुरुषार्थ के द्वारा विपत्ति को निर्मूल कर देते हैं। आप भी उद्योग का आश्रय लीजिये। आपका सेवक जब मैं धनुष बाण लिये आपके साथ हूँ, तो आप चिन्ता क्यों करते हैं। मुझे साथ लेकर जनस्थान के समस्त वनों में, गोदावरी के तट और पुलिनों में, प्रस्रवण पर्वत के समस्त शिखरों और कंदराओं में आप भगवती सीता-देवी की खोज करें। पहिले हम समस्त पृथिवी को छान डालेंगे, फिर पाताल में चलेंगे। फिर सातों लोकों में ढूँढ़ेंगे। सारांश जहाँ भी जानकी मिलेगी, वहीं हम उसका पता लगावेंगे। यम भी यदि ले गया होगा, तो उससे भी युद्ध करके मैथिली को लौटा लावेंगे। प्रभो! पुरुषार्थ का अवलम्बन लीजिये। अधीरता को छोड़िये। साहस करके खड़े हो जाइये। देखिये, वायु दक्षिण की ओर बह रही है। खग-वृन्द कल कल करते हुए दक्षिण की ओर उड़े जा रहे हैं। मृग भागते हुए दक्षिण की ही ओर जा रहे हैं। दक्षिण में ही राक्षसों का निवास है। अतः आप मुझे साथ लेकर दक्षिण दिशा की ओर चलिये।

प्रथम दिन शकुशल समाप्त हुआ। द्वितीय दिन राम बड़ी उत्सुकता से राक्षसों की प्रतीक्षा करते रहे कोई नहीं आया। तृतीय दिन उन्होने बड़ी सावधानी रखी, चतुर्थ दिन भी जब कोई राक्षस नही आया तो वे निराश होगये। पचम दिन उन्होने समझा अब कोई राक्षस न आवेगा। छठे दिन ज्यो ही पूर्णाहुति अवसर आया, त्योंही आकाश मे जल भरे मेघो के समान आते हुए राक्षस दिखाई दिये। शीघ्रता से सावधान होकर श्रीराम ने लक्ष्मल से कहा–लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! देखो, देखो, वे दुष्ट राक्षस आकाश में मंडराने लगे। अवश्य ही ये मुनि के मख मे विघ्न करने आये है, इन्हें मारना हमारा परम धर्म है। तुम सावधान हो जाओ।

यह सुनकर लक्ष्मण बाण तानकर सम्हल कर खड़े हो गये। इतने मे ही यज्ञ कुंड के समीप राक्षसो ने रुधिर की वर्षा की। उसी समय मारीच को लक्ष्य करके बिना फर का बाण राम ने उसको मारा, बाण के लगते ही वह सैकड़ों योजन समुद्र के उस पार लंका में जा पड़ा। राम जी ने उसके प्राण इसलिये नहीं लिये कि उसके द्वारा आगे भी असुर संहारका बहुत कार्य कराना था। दूसरा एक बाण फर सहित मारा, वह सुबाहु की छाती में जाकर लगा, उससे वह मरकर धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा। एक बाण और भी छोड़ा, जिससे बहुत से राक्षस मर गये, बहुत से डरकर भाग गये, बहुत से घायल हुये।

राक्षस के मारे जाने पर विधिवत यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। मुनियों ने विश्वामित्र का अभिनन्दन किया। सभी ने श्रीराम के बल, वीर्य, पराक्रम, ओज, तेज और शूरवीरता की प्रशंसा की। दोनों भाइयों ने तप से सिद्ध हुए मुनि के पाद पद्मों में उसी प्रकार प्रणाम किया, जिस प्रकार अश्विनी कुमारों ने अपने पिता सूर्य के पाद पद्मों में प्रणाम किया था। मुनि ने दोनो राजकुमारों

से बोले—"लक्ष्मण! मैं इन पुष्पों को भली भाँति पहिचानता हूँ। मैं बड़े प्रयत्न से इन पुष्पों को तोड़ कर लाया था। मैंने इन्हें अपनी प्राणप्रिया सीता को दिया था, उसने अत्यन्त ही उल्लास के साथ इन्हें अपनी चोटी में लगाया था। निश्चय ही यहाँ राक्षसों ने उसे काटकर बाँटकर खाया है। देखो, देखो ये रक्त के बिन्दु पड़े हैं। बड़े बड़े पद चिन्ह ये राक्षसों के हैं। लक्ष्मण! मैं अपनी प्रिया के पद चिन्हों को पहिचानता हूँ। उसका उदर कृश है, उसके नितंब भारी हैं इसलिये उसकी एड़ियाँ अधिक धूलि में धँस जाती हैं। वे ध्वज, अंकुश, वज्र आदि समस्त शुभ चिन्हों से चिन्हित मेरी प्राणप्रिया के ही हैं। वह यहाँ दौड़ी है। इसीलिये उसके केशपाशों से सुमन पदचिन्ह गिर पड़े हैं। प्रतीत होता है दो राक्षसों ने सीता को हरा है। फिर उन दोनों में सीता को भक्षण करने के निमित्त परस्पर में युद्ध हुआ है। सामने यह टूटा धनुष पड़ा है। देखो, यह कैसा विशाल धनुष है। रथ टूटा हुआ पड़ा है, खच्चर मरे पड़े हैं, निश्चय ही यहाँ दो राक्षसों का भीषण युद्ध हुआ है। इसे चल कर देखें यहाँ मेरी प्रिया के बाल ही मिल जायँगे। संभव है अस्थियाँ मिल जायँ, उन्हें ही मैं हृदय से लगा कर सुखी हूँगा। लक्ष्मण! मैं अब राक्षसों का नाश निश्चय ही कर डालूँगा। अपनी प्रिया के भक्षण करने वाले राक्षसों को मार कर ही मरूँगा। बिना वैदेही का बदला लिये मैं मान नहीं सकता। राक्षसों ने मुझसे खर, दूषण, त्रिशिरा आदि के वध का बदला लिया है। किन्तु जैसे भूल से खा लेने पर कोई मक्खी को पचा नहीं सकता, इसी प्रकार राक्षस मेरी पत्नी को नहीं पचा सकते। मैं समस्त राक्षसों को मार डालूँगा कदाचित् मेरी प्रिया जीवित होगी, तो मैं जैसे भी होगा तैसे युद्ध में राक्षसों का संहार

॥ श्रीहरिः ॥

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें

मुद्रक—पं० बंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८।२ मुट्ठीगंज, इलाहाबाद।

द जोशी

न्म : 21 मई 1931, उज्जैन (म० प्र०)

॥ श्रीहरिः ॥

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें

१—भागवती कथा—(१०८ खण्डों में), ६६ खण्ड छप चुके हैं। खण्ड का मू० १.२५ पै० डाकव्यय पृथक्।
२—श्री भागवत चरित—लगभग ६०० पृष्ठकी, सजिल्द मू० ५.२५
३—सटीक भागवत चरित—बारह बारह सौ पृष्ठ के सजिल्द दोनों ख का मू० १३.००
४—बदरीनाथ दर्शन—बद्री यात्रा पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ मू० ४.००
५—महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन, पृ० सं० ३५० मू० २.७५
६—मतवाली मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप, मू० २.००
७—कृष्ण चरित—मू० २.००
८—मुक्तिनाथ दर्शन—मुक्तिनाथ यात्रा का सरस वर्णन मू० २.५०
९—गोपालन शिक्षा—गौओं का पालन कैसे करें मू० २.००
१०—श्री चैतन्य चरितावली—पाँच खंडोमें। प्रथम खंड का मू० १.००
११—नाम संकीर्तन महिमा—पृष्ठ संख्या ६६ मू० ०.५०
१२—श्रीशुक—श्रीशुकदेवजी के जीवन की झाँकी (नाटक) मू० ०.५०
१३—भागवती कथा की बानगी—पृष्ठ संख्या १०० मू० ०.२५
१४—शोक शान्ति—शोक की शान्ति करने वाला रोचक पत्र मू० ०.३१
१५—मेरे महामना मालवीयजी—उनके सुखदसस्मरण पृ०सं०१३० मू०
१६—भारतीय संस्कृति और शुद्धि—(शास्त्रीय विवेचन) मू० ०.३१
१७—प्रयाग माहात्म्य—मू० ०.१२
१८—राघवेन्द्र चरित—मू० ०.३१
१९—भागवत चरित की बानगी—पृष्ठ संख्या १०० मू० ०.२५
२०—गोविन्द दामोदर शरणागत स्तोत्र—(छप्पयछंदोंमें) मू० ०.१५
२१—आलवन्दार स्तोत्र—छप्पयछन्दों सहित मू० ०.२५
२२—प्रभुपूजा पद्धति मू० ०.२५
२३—वृन्दावन माहात्म्य—मू० ०.१२
२४—गोपीगीत—अमूल्य।

मुद्रक—पं० वंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८।५२ मुट्ठीगंज इलाहाबाद।